इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BSOC-103

समाजशास्त्र का परिचय

द्वंद्व परिप्रेक्ष्य

प्रकार्यवाद

संरचनावाद

उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य

व्याख्यात्मक परिप्रेक्ष्य

सांकेतिक अंतःक्रिया

समाजशास्त्र का परिचय

नारीवादी परिप्रेक्ष्य

धर्म : दुर्खाइम और वेबर

श्रम विभाजनः दुर्खाइम और मार्क्स

पूंजीवाद : मार्क्स और वेबर

सामाजिक परिवर्तन एवं रूपांतरण

दलित परिप्रेक्ष्य

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

BSOC-103

समाजशास्त्र का परिचय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. जे . के. पुंडीर
समाजशास्त्र विभाग
सी. सी. एस विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रो. शरत भौमिक
टीआईएसएस, मुंबई

प्रो. एस. रॉय
एनबीयू,दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल

प्रो. रोमा चटर्जी
समाजशास्त्र विभाग
दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स
न्यू दिल्ली

प्रो. सव्यसाची
समाजशास्त्र विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

डॉ. अभिजीत कुंडु
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. देबल के. सिंहरॉय
समाजशास्त्र संकाय
इग्नू , नई दिल्ली

प्रो. नीता माथुर
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ अर्चना सिंह
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ किरणमयी भुशी
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, दिल्ली

डॉ रबीन्द्र कुमार
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. आर. वाशुम
समाजशास्त्र संकाय, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम तैयार करने वाली टीम

खंड और इकाई		इकाई लेखक	अनुवादक
खंड 1	**समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-I**		
इकाई 1	उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य	प्रो. (से.नि.) शुभद्रा चन्ना, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	आरती अनुपम
इकाई 2	प्रकार्यवाद	प्रो. जे.के. पुंडीर, समाजशास्त्र विभाग सी.सी.एम विश्वविद्यालय, मेरठ	आरती अनुपम
इकाई 3	संरचनावाद	प्रो. (से.नि.) शुभद्रा चन्ना, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	डॉ. राजेश कुमार माँझी
इकाई 4	द्वंद्व परिप्रेक्ष्य	प्रो. (से.नि.) शुभद्रा चन्ना, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	एम.पी. कमल
खंड 2	**समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-II**		
इकाई 5	व्याख्यात्मक समाजशास्त्र	यू सोमोदीप	आरती अनुपम
इकाई 6	सांकेतिक अन्तः क्रियावाद	प्रो. (से.नि.) शुभद्रा चन्ना, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	एम.पी. कमल
खंड 3	**समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-III**		
इकाई 7	नारीवादी परिप्रेक्ष्य	चारू साहनी	डॉ राजेश कुमार
इकाई 8	दलित परिप्रेक्ष्य	प्रो. विवेक कुमार, सीएसएसएस जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय	एम.पी. कमल
खंड 4	**मतभेद एवं बाद-विवाद**		
इकाई 9	श्रम.विभाजन : दर्खाइम और मार्क्स	ईएसओ 13, इकाई 20 से अनुग्रहित एवं संपादित	राजेन्द्र पांडे
इकाई 10	धर्म : दर्खाइम और वेबर	ईएसओ 13, इकाई 19 से अनुग्रहित एवं संपादित	राजेन्द्र पांडे
इकाई 11	पूँजीवाद : मार्क्स और वेबर	ईएसओ 13, इकाई 21 से अनुग्रहित एवं संपादित	शर्मिष्ठा घोषल
इकाई 12	सामाजिक परिवर्तन एवं रूपांतरण	डॉ. आर. वाशुम, समाजशास्त्र संकाय इग्नू, नई दिल्ली	एम.पी.कमल

पाठ्यक्रम संयोजक : डॉ. आर. वाशुम, समाजशास्त्र संकाय, इग्नू

प्रधान संपादक: प्रोफेसर (से.नि.) शुभद्रा चन्ना, मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय और डॉ. आर. वाशुम, समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

संपादक (विषयवस्तु, प्रारूप और भाषा) : डॉ. आर. वाशुम, समाजशास्त्र संकाय, इग्नू

शैक्षणिक परामर्शदाता : डॉ. विनोद कुमार यादव

कवर डिजाइन : डॉ. जुचामो याँथान और ए.डी.ए. ग्राफिक्स

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज	श्री यशपाल	श्री सुरेश कुमार
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)	अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)	एसओएसएस
एमपीडीडी, इग्नू, नई दिल्ली	एमपीडीडी, इग्नू, नई दिल्ली	इगनू, नई दिल्ली

जुलाई, 2020

ISBN:

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, एमपीडीडी, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206,A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

विषय सूची

			पृष्ठ संख्या
खंड	**1**	**समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-I**	**7**
इकाई	1	उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य	9
इकाई	2	प्रकार्यवाद	22
इकाई	3	संरचनावाद	33
इकाई	4	द्वंद्व परिप्रेक्ष्य	48
खंड	**2**	**समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-II**	**61**
इकाई	5	व्याख्यात्मक समाजशास्त्र	63
इकाई	6	सांकेतिक अंतःक्रिया	77
खंड	**3**	**समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-III**	**91**
इकाई	7	नारीवादी परिप्रेक्ष्य	93
इकाई	8	दलित परिप्रेक्ष्य	109
खंड	**4**	**मतभेद एवं वाद-विवाद**	**127**
इकाई	9	श्रम-विभाजन, दर्खाइम और मार्क्स	129
इकाई	10	धर्म : दर्खाइम और वेबर	148
इकाई	11	पूँजीवाद : मार्क्स और वेबर	163
इकाई	12	सामाजिक परिवर्तन एवं रूपांतरण	180
शब्दावली			**193**
सहायक पुस्तकें			**197**

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1

समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-I

बी.एस.ओ.सी.-103 : समाजशास्त्र-II

पाठ्यक्रम, समाजशास्त्रीय चिंतन की सामान्य प्रस्तुति प्रदान करने पर लक्षित है। पाठ्यक्रम के तहत् मूल पाठ्यसामग्री का अध्ययन करने वालों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया है कि समय के साथ सामाजिक विचारकों ने समाज के विविध पहलुओं को संकल्पनाबद्ध कैसे किया है। यह शोध-पत्र, अन्य शोध-पत्रों के विचारकों को एक समाजशास्त्रीय आधार भी प्रदान करता है।

पाठ्यक्रम के चार खंड और 12 इकाइयाँ हैं। **पहला खंड** - ''समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-I'' मुख्य रूप से समाजशास्त्र के चार परिप्रेक्ष्यों – विकासवादी परिप्रेक्ष्य, प्रकार्यवाद, संरचनावाद और द्वंद्व परिप्रेक्ष्यों पर प्रकाश डालता है। **खंड 2,** ''समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-II'', समाजशास्त्र के अन्य दो परिप्रेक्ष्यों, ''व्याख्यात्मक परिप्रेक्ष्य'' और ''सांकेतिक अंतःक्रिया'' पर आधारित है। **खंड 3,** समाजशास्त्र संबंधी परिप्रेक्ष्य-III, नारीवादी परिप्रेक्ष्य और दलित परिप्रेक्ष्य से संबंधित है। **खंड 4**, 'वाद-विवाद', 'श्रम-विभाजन', दुर्खिम और मार्क्स' और ध र्म : दुर्खाइम और वेबर'' और ''पूंजीवाद : मार्क्स और वेबर'' को ध्यान में रखकर इनके बीच के फर्क पर ध्यान केंद्रित करता है। इस खंड की अंतिम इकाई ''सामाजिक परिवर्तन एवं रूपांतरण'' की चर्चा करती है।

पाठ्यक्रम विभिन्न खंडों से निर्मित है और प्रत्येक खंड के तहत् इकाइयों को विषयवस्तु की प्रासंगिकता की नज़र से क्रमवार तरीके से संरचित किया गया है ताकि विद्यार्थी क्रमवार तरीके से अध्ययन कर पाठ्य सामग्री से भलीभांति आत्मसात् करने के योग्य हो। प्रत्येक इकाई - रूपरेखा, उद्देश्य, परिचय, मुख्य विषयवस्तु, सारांश और कुछ उपयोगी पुस्तकों की क्रमवार शृंखला में पिरोई एक माला के समान है। प्रत्येक इकाई के अंत में जहाँ आवश्यक है, बोध प्रश्नों की प्रस्तुति की गई है और साथ ही, परीक्षा के नज़रिये से नमूना प्रश्नों के रूप में भी इनके अध्ययन कर जोर दिया गया है। इकाई के अंत में 'कुछ उपयोगी पुस्तकें' और 'शब्दावली' को इकाई की बेहतर व्याख्या की नजर से एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में पाठ्यक्रम के अंत में दर्शाया गया है।

इकाई 1 उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य*

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक उद्विकास की अवधारणा की शुरुआत

1.3 उद्विकास के कार्बनिक सादृश्य और जैविक सिद्धांत

1.4 सांस्कृतिक उद्विकास के सिद्धांत

1.5 शास्त्रीय उद्विकासवादी सिद्धांत की सीमा

1.6 नव-उद्विकासवादी सिद्धांत

1.7 सारांश

1.8 संदर्भ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप समझ पाएंगे :

- समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के रूप में उद्विकास का उद्भव;
- समाजशास्त्र और मानव विज्ञान में उद्विकासवादी सिद्धांत के प्रमुख विचारक;
- उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य की आलोचना; और
- समकालीन लोकप्रिय सोच पर उद्विकासवादी सिद्धांत का प्रभाव।

1.1 प्रस्तावना

एक विषय के रूप में समाजशास्त्र की जड़ें प्रारंभिक यूनानी दार्शनिकों के पश्चिम के सामाजिक दर्शन में निहित हैं और यूरोपीय ज्ञानोदय काल में एक अनुशासन के रूप में एक निश्चित आकार लेती हैं। इस अवधि को मानव समाजों के लिए इसके अनुप्रयोग के परिप्रेक्ष्य और संभावना के रूप में प्रत्यक्षवाद की स्थापना द्वारा चिह्नित किया गया है। प्रत्यक्षवाद काफी हद तक डेसकार्ट और कांट जैसे विचारकों के कामों पर आधारित है, जो मानव अस्तित्व की प्रकृति, विशेष रूप से मानव चेतना के बारे में परिलक्षित होता है। मन और शरीर के द्वंद्व के सिद्धांत के डेसकार्टे ने सकारात्मकता पर आधारित आधुनिक वैज्ञानिक सोच के उद्भव और इंद्रियों की प्रभावकारिता पर निर्भरता की नींव रखी। एक वस्तु कुछ ऐसी थी जो समय और स्थान के अक्ष पर स्थित हो सकती है और कम से कम इंद्रियों के लिए सुलभ थी, और यदि वर्तमान में नहीं जानी जाती है, तो भविष्य में उचित तकनीक के साथ जानने योग्य थी। इस प्रकार विज्ञान कुछ ऐसा था जो संवेदी धारणा पर निर्भर था, जो कि प्रत्यक्षता के प्रमाण और अपरिहार्य या शाश्वत नहीं होने के दर्शन पर आधारित था। दूसरे शब्दों में, पर्याप्त 'सबूत' को 'सत्य' के साथ हमेशा चुनौती दी जा सकती है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद का मानना था कि वैज्ञानिक विधियों के उपयोग द्वारा स्थापित की जा सकने वाली सच्चाइयाँ मौजूद थीं, लेकिन यह सत्य तब तक था जब तक इसे चुनौती नहीं दी गई थी। दूसरे शब्दों में, चीजों को गिवेन (प्रदत्त) के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए,

*यह इकाई प्रो. सुभद्रा चन्ना के द्वारा लिखी गयी है।

लेकिन उन्हें सच्चाई के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता थी। सत्य की स्थापना की यह प्रक्रिया, या तथ्य जिन्हें वे वैज्ञानिक शब्दावली में कहते थे, 'निष्पक्षता' और कठोरता के आधार पर प्रक्रिया का पालन करना था। किसी को उस वस्तु से अलग किया जाना चाहिए जो एक अध्ययन कर रहा हो ताकि वह सही परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर सके। मन/शरीर का द्वंद्व या पदार्थ से मन का अलग होना, वह मूल आधार था जो वैज्ञानिक निष्पक्षता, तथ्यात्मक ज्ञान की स्थापना के लिए आवश्यक था।

यह परिप्रेक्ष्य चर्च के सिद्धांतों या धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के विरोध में था, जो किसी को भी स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता था, जिसे निर्विवाद रूप से दिया गया था, 'प्रदत्त' सत्य को चुनौती देने के लिए नहीं और अनजाने को स्वीकार करने के लिए, अर्थात् एक पवित्र वास्तविकता का अस्तित्व जो ज्ञान से परे था। दूसरे शब्दों में, तथ्यों और विश्वास के बीच एक बुनियादी असहमति थी। प्राचीन काल की तुलना में समाजशास्त्र एक नया अनुशासन है, जैसे कि खगोल विज्ञान, चिकित्सा, भौतिक विज्ञान और गणित, क्योंकि लंबे समय तक समाज को मनुष्यों की तरह एक दिव्य रचना के रूप में देखा गया था। समाज को इंद्रियग्राही (Objectity) करने की संभावना नहीं हुई थी, हालांकि समाज और मनुष्यों की प्रकृति दार्शनिकों द्वारा परिलक्षित हुई थी।

1.2 सामाजिक उद्विकास की अवधारणा की शुरुआत

सामाजिक उद्विकास की अवधारणा या संभावना है कि समाज बदलते हैं, या बदल सकते हैं यह दो प्रमुख घटनाओं द्वारा प्रेरित किया गया था। पहला यूरोपीय लोगों द्वारा गैर-श्वेत दुनिया का उपनिवेश था जो व्यापारी पूंजीवाद के साथ शुरू हुआ था और सत्रहवीं शताब्दी तक दुनिया के अधिकांश हिस्सों में अच्छी तरह से चल रहा था। यूरोपीय अपनी बढ़ती आबादी और अपने देशों में उभरते उद्योगों को खिलाने की आवश्यकता को समायोजित करने के लिए भूमि और संसाधनों की तलाश में दुनिया के कई कोनों में फैले हुए थे। इस प्रक्रिया में वे कई तरह के लोगों और जीवन के तरीकों के संपर्क में आए, एक सवाल जो प्रमुख हो गया था, वह था कि मनुष्य अलग अलग क्यों हैं ? उनके पास जीवन के विभिन्न तरीके क्यों हैं? इस सवाल का जवाब नस्लीय प्रतिमान के भीतर यह मानकर दिया गया था कि वे मानव होने के विभिन्न स्तरों पर मनुष्य थे जो कि कुछ दूसरों की तुलना में अधिक मानवीय थे। लेकिन ज्ञानोदय काल के उदारवादी विचारकों का मानवतावाद कुछ मनुष्यों की नस्लीय हीनता को अन्य लोगों के मुकाबले स्वीकार करने में अनिच्छुक थी।

ज्ञानोदय काल को दुनिया के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण परिवर्तनों द्वारा चिह्नित किया गया था। सार्वभौमिक मानवतावाद (स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व) और सिद्धांतों जैसे कि मानव जाति की मानसिक एकता जैसी अवधारणाओं ने मानव दुनिया को एक साथ बांधने की कोशिश की। विडंबना यह है कि इन मूल्यों का गठन नरसंहार और हिंसा की पृष्ठपट में हुआ था जो औपनिवेशिक विस्तार के साथ थे। लेकिन प्रमुख विचारक उदारवादी थे और सामान्य मानवतावाद के समर्थक थे और इस प्रकार विविधता का प्रश्न उनके लिए अनुत्तरित रहा।

दूसरी ऐतिहासिक घटना भी दो प्रमुख क्रांतियों में से एक थी जो दुनिया के गठन में चली गई थी जैसा कि हम जानते हैं। अमेरिकी क्रांति और फ्रांसीसी क्रांति, और जिसके परिणामस्वरूप होने वाली प्रमुख सामाजिक उथल-पुथल ने सामाजिक विचारकों को यह सोचने के लिए प्रेरित किया कि शायद समाजों को वैसा नहीं बनाया गया जैसा कि वे थे, लेकिन कुछ अतीत से वर्तमान में बदल गए थे। यदि सामाजिक परिवर्तन क्रांतियों के माध्यम से हुआ था, विशेष रूप से फ्रांसीसी क्रांति (1848) द्वारा लाया गया क्रांतिकारी परिवर्तन, तो संभव है कि समाज अतीत में बदल गए हों। मानव विविधता के बारे में पहला

सवाल, दूसरा मानव सामाजिक परिवर्तन के बारे में था। 18वीं शताब्दी की यूरोपीय समाज के बारे में महत्वपूर्ण सवाल था, जिस समय ये विचार सिद्धांतों को बनाने के लिए परिपक्व हुए, इस बारे में कि यूरोपीय कैसे आए थे, और उनका अतीत क्या था? एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न परिवर्तन की प्रक्रिया के बारे में था, यह कैसे होता है और क्यों होता है?

जैसा कि रेमंड आरोन (1965: 233) ने 1848 से 1851 की अवधि को बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल के रूप में चिह्नित किया था, 'एक गणतंत्र के पक्ष में एक संवैधानिक राजशाही का विनाश और एक शाही, सत्तावादी शासन के पक्ष में गणतंत्र का विनाश'। यह वह समय था जब कॉम्ट ने सामाजिक विकास के अपने सिद्धांत को आगे रखा क्योंकि वह अपनी आंखों के सामने औद्योगिक और वैज्ञानिक के साथ धार्मिक और सैन्य समाज की प्रतिस्थापना को देख सकता था। कॉम्ट एकीकृत मानव इतिहास में विश्वास करते थे जिसमें एक आदर्श और अंतिम चरण था। एक जो उसके सामने आ रहा था। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की उनकी संकल्पना प्रगति की थी और उन्होंने इस प्रगतिशील विकास के तीन प्रमुख चरणों की पहचान की। पहले चरण में, जो धर्मशास्त्र या धर्म द्वारा शासित है, मनुष्य प्राचीन धर्मों के देवी-देवताओं के समान अलौकिक प्राणियों के लिए समाज की शक्ति और नियंत्रण का श्रेय देता है। दूसरे चरण में उसे रूपक के रूप में संदर्भित किया जाता है, जब विचार अधिक सार और पारलौकिक हो जाता है, और बल प्रकृति की तरह अमूर्त हो जाते हैं। तीसरे चरण में सोच अधिक तथ्यात्मक और व्यवस्थित हो जाती है और लोग प्रत्यक्ष अवलोकन और सहसंबंधों द्वारा घटना की व्याख्या करने लगते हैं।

ये अपरिहार्य चरण नहीं हैं और दुनिया भर में समान रूप से घटित नहीं होते हैं। उन्होंने परिवर्तन को विज्ञान के वर्गीकरण के संदर्भ में, अमूर्त से सकारात्मकता तक समझाया। प्रत्यक्षवादी सोच वह विज्ञान है जो पहले विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित और बाद में जीव विज्ञान जैसे अधिक जटिल विज्ञानों की तरह सरल विज्ञान में दिखाई देता है। उन्होंने समाजशास्त्र को निष्पक्षता और तर्कसंगतता द्वारा चिह्नित प्रत्यक्षवादी पद्धति के उपयोग द्वारा समाज के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया। उनका यह भी मानना था कि औद्योगिक समाज का उद्देश्य धन का सृजन था और इस प्रकार उन्होंने बड़े पैमाने पर पूँजीवादी लक्ष्यों का समर्थन किया और भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्रगतिशील और धन के संचय को बढ़ावा दिया। हालाँकि युद्ध से मुक्त होने के रूप में औद्योगिक समाज के बारे में कॉम्ट की भविष्यवाणियाँ बहुत ही गलत साबित हुईं क्योंकि पश्चिमी यूरोप न केवल प्रमुख युद्धों का बल्कि उपनिवेशवाद का भी केंद्र बन गये। कॉम्ट ने कोंडोरसेट से प्रगति का विचार उधार लिया था, जिसने उसे पहले दिया था। प्रगति के उनके विचार में आध्यात्मिक शक्ति के उद्भव को शक्ति के अंतिम स्रोत के रूप में शामिल किया गया थाय कुछ ऐसा जो दुनिया को देखना बाकी है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के बौद्धिक सोच पर हावी होने वाले उद्विकासवादी सिद्धांत के कुछ प्रमुख प्रस्तावकों में हेनरी मेन, हर्बर्ट स्पेंसर, टॉनीज, बाचोवन, लुईस हेनरी मॉर्गन और एमिल दर्खाइम थे। कॉम्ट द्वारा पोस्ट किए गए तीन चरणों के विपरीत, उनमें से अधिकांश ने मानव सामाजिक संगठन और सामाजिक दर्शन में कुछ प्रमुख संक्रमण को चिह्नित करते हुए दो चरण सिद्धांत दिये। हेनरी मेन, एक प्रख्यात न्यायविद ने स्थिति से अनुबंध तक संक्रमण का अपना सिद्धांत दिया, जिससे कि उनके अनुसार नातेदारी आधारित समाजों से राज्य या क्षेत्रीय समाजों में संक्रमण को भी चिह्नित किया। नातेदारी आधारित समाजों में, एक रिश्ते या स्थिति के माध्यम से सदस्यता प्राप्त करता है जबकि एक राज्य में यह नागरिकता की अवधारणा पर आधारित है जो मुख्य रूप से क्षेत्रीय और कानूनी या प्रकृति में संविदात्मक है।

जर्मन विद्वान टोनीज ने उल्लेख किया कि समाज जेमिन्शाफ्ट से जेशलशाफ्ट तक जाता है, जिसके द्वारा उन्होंने ग्रामीण से शहरी और साधारण चेहरे से समाजों से अधिक जटिल लोगों तक संक्रमण को चिह्नित किया। जेमिन्शाफ्ट व्यक्तिगत, भावनात्मक संबंधों और अवैयक्तिक, औपचारिक और गणनात्मक संबंधों द्वारा जेशलशाफ्ट की विशेषता है। इस अर्थ में कि टोनीज ने यह नहीं सोचा था कि अवैयक्तिक रूप से जटिल समाज साधारण समाजों के सामुदायिक जीवन का सामना करने के लिए भावनात्मक रूप से सुसंगत और सुरक्षित चेहरे से बेहतर था। कोई कह सकता है कि विकास की उसकी अवधारणा बेहतर बनने की ओर नहीं थी। इस अर्थ में उन्होंने यूरोप के उभरते औद्योगिक शहरी समाजों को भी शामिल नहीं किया।

बाचोवेन ने जो, उन्नीसवीं सदी के एक प्रख्यात यूरोपीय विद्वान थे, मैकलेरन के समान, मातृसत्ता से लेकर पितृसत्ता तक के विकास का एक सूत्र दिया था। यह वर्गीकरण यूरोसेंट्रिक था और पूर्वी और स्वदेशी समाजों के खिलाफ पूर्वाग्रह ग्रसित था जहां मातृरेखीय (मैट्रिलिनी) स्थित था। बाचोवेन की मातृसत्ता का चित्रण किसी भी वास्तविक समाज (जिसमें कोई ज्ञात जातीय उदाहरण नहीं हैं) से लिया गया है, लेकिन अपने स्वयं के कल्पित समाजों से नहीं। मदर-राइट कॉम्प्लेक्स के उनके चरित्र वर्णन ने संकेत दिया कि इसमें ज्यादातर नकारात्मक और निष्क्रिय लक्षण शामिल थे और फादर राइट प्रगतिशील था और सभ्यता के आगमन को चिह्नित करता था। उन्होंने पश्चिमी गोलार्ध के साथ उत्तरार्द्ध को भी जोड़ा और पश्चिम की पूर्व पर विजय को सभ्यता की शुरुआत माना।

एमिल दर्खाइम का समाजशास्त्रीय निर्माण नैतिक या सभ्यता संबंधी विचारों की तुलना में अधिक संरचनात्मकता पर आधारित था। उन्होंने माना कि सरल या निम्न चरण समाज यांत्रिक एकजुटता पर आधारित थे, जबकि अधिक जटिल समाज जैविक एकजुटता पर आधारित थे। यांत्रिक (मैकेनिकल) एकजुटता समाजों में होने वाली समानता के संबंध पर आधारित थी जहां हर कोई हर किसी की तरह था। एक दूसरे से संबंधित लोग एक नैतिक समुदाय की तरह, जैसे एक सामान्य कुलीन पूर्वज से वंश पर आधारित, और ये समुदाय सहयोग और साझाकरण के संबंधों से बंधे थे। जैसे-जैसे समाज अधिक जटिल होता गया, कौशल, शिल्प और संसाधनों की विशेषज्ञता होती गई। सहयोग के बजाय, इस तरह के समाज का आदान-प्रदान के आसपास गठन किया गया, क्योंकि लोगों के पास अलग-अलग संसाधन थे जो उन्हें एक दूसरे के साथ आदान-प्रदान करने के लिए आवश्यक थे। जितना जटिल श्रम का विभाजन हुआ, उतना ही जटिल सामाजिक संगठन बन गया और स्तरीकरण कौशल के अंतर को समायोजित करने और संसाधनों पर नियंत्रण करने के लिए हुआ। जबकि यांत्रिक एकजुटता का नैतिक आधार था, जैविक एकजुटता तर्कसंगत और महत्वपूर्ण थी।

उद्विकास के शास्त्रीय समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के मध्य, सबसे विस्तृत और पूर्ण विचार हर्बर्ट स्पेंसर द्वारा दिया गया था। उन्होंने राजनीतिक समाज के चरण को विकास द्वारा एक मंच दिया, जिसकी शुरुआत किसी राज्य या किसी प्रमुख से नहीं हुई, फिर एक प्रमुख था, फिर प्रमुखों का एक मिश्रित समाज (जैसे प्राचीन सामंती समाज), फिर राज्य का उदय और फिर आधुनिक अवस्था। अंतिम दो जटिल इकाइयाँ हैं जो कई राजनीतिक रूपों और स्तरों को समाहित करती हैं और कई स्तरों की शक्ति और प्रबंधकीय संरचनाओं द्वारा निर्देशित होती हैं। स्पेंसर की उनके सिद्धांत के लिए ज्यादातर आलोचना की गई कि समाज को शक्तिहीन और कमजोर को खत्म करने देना चाहिए। वह कमजोरों के लिए किसी भी तरह के सामाजिक समर्थन तंत्र के खिलाफ थे, उन्होंने कहा कि केवल जो लोग हासिल करने की क्षमता रखते थे, उनके पास जीवित रहने का अधिकार था। प्रगति का उनका विचार इस

प्रकार एक आत्म-विकास और प्रतिस्पर्धी स्थितियों में सहने की क्षमता पर आधारित था, जिसका अर्थ है कि केवल वे ही जो जीवित रहने के योग्य थे या 'फिट' थे, उन्हें आगे बढ़ना चाहिए। सामाजिक कल्याण एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि उन्होंने सोचा था कि यह उन लोगों के अस्तित्व को संभव बना देगा जो जीवित रहने के लायक नहीं थे। काफी हद तक उनके सिद्धांत की आलोचना उन लोगों द्वारा की गई है जो मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और मानवता में विश्वास करते हैं। लेकिन उसी समय में ऐसे सिद्धांतों ने अधिक रूढ़िवादी विचारकों को प्रभावित किया, जो नस्लीय और वर्गीय पूर्वाग्रहों में जकड़े थे।

1.3 उद्विकास के कार्बनिक सादृश्य और जैविक सिद्धांत

समाज के अध्ययन के लिए प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण समाज के लिए एक जैविक सादृश्य के रूप में भी जाना जाता है, जो समाज को एक जैविक अवयव से तुलना करके प्राकृतिक नियमों का पालन करता है। कार्बनिक सादृश्य का एक पहलू यह था कि जीव के रूप में समाज की तुलना भ्रूण से की जाती थी, क्योंकि भ्रूण अपने उद्विकास के नियम से बढ़ता है, समाज भी अपने स्वयं के कानून से विकसित होगा। यह आधार सामाजिक उद्विकास के एकांत सिद्धांत का आधार भी था, ताकि समाज एक ऐसी प्रजाति के समतुल्य हो जो एक ही पंक्ति में विकसित हो। कार्बनिक उपमा ने यह भी मान लिया कि वर्तमान समाज पहले वाले लोगों का व्युत्पन्न था और विकास की प्रक्रिया में, वे विविध और शाखाओं में बंटे थे, पेड़ के समान।

जैविक सादृश्य का दूसरा पहलू प्राकृतिक चयन का प्रतिमान था। सामाजिक विकास में, ''योग्यतम के जीवित रहने'' की गलत धारणा को हर्बर्ट स्पेंसर और उनके सिद्धांत का पालन करने वाले लोगों ने अनुग्रहीत किया था। जैविक विकास में इस्तेमाल किया गया शब्द ''संशोधन के साथ वंशज'' था, और यह शब्द, ''फिटेस्ट'' वास्तव में एक है जिसका मतलब है कि जैविक उद्विकास के संदर्भ में कुछ भी नहीं है क्योंकि जीवित रहने के लिए एक प्रजाति के लिए आवश्यक सभी कुछ स्वयं को पुनः उत्पन्न करने की क्षमता है। जब तक यह प्रजाति को जारी रखने के लिए पर्याप्त संतान पैदा करता है, तब तक इसे 'फिट' माना जाता है। हालाँकि सभी प्रजातियां एक-दूसरे से और प्राकृतिक वातावरण से जुड़ी हैं, इसलिए जीवित रहना किसी एक प्रजाति के जीवित रहने की क्षमता का कार्य नहीं है, बल्कि अन्य सभी पर है जो इसके अस्तित्व के लिए निर्भर है, जो इसके भोजन और संसाधन का आधार प्रदान करते हैं, साथ ही साथ प्राकृतिक परिस्थितियाँ जो इसके अस्तित्व को संभव बनाती हैं। इस प्रकार स्पेंसर जैसे विद्वानों द्वारा ग्रहण किए जाने के विपरीत, अस्तित्व एक व्यक्तिगत मामले की तुलना में अधिक संबंधपरक है। इसी प्रकार, जैविक प्रजातियों के साथ-साथ समाजों में आंतरिक अंतर और भिन्नताएं मौजूद हैं, इसलिए कि जीवित और'फिटनेस' को जैविक प्रजातियों और मानव समाज दोनों के पूरे समुदाय पर सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता है।

1.4 सांस्कृतिक उद्विकास के सिद्धांत

अठारहवीं शताब्दी के दार्शनिक जैसे कॉम्ट, मोंटेस्क्यू, दर्खाइम और अन्य द्वारा दिए गए मार्गदर्शन के बादय ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एडवर्ड बी टेलर द्वारा बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में औपचारिक रूप से स्थापित किए गए नृविज्ञान के अनुशासन ने भी उद्विकासवाद के साथ अपनी सैद्धांतिक यात्रा शुरू की, हालांकि साथ ही साथ प्रसार सिद्धांतकारों का एक समानांतर वर्ग था। टेलर ने न केवल संस्कृति की पहली औपचारिक परिभाषा दी, उन्होंने

सांस्कृतिक उद्विकास के पाठ्यक्रम का भी उसी तरह पता लगाया, जिस तरह से कॉम्टे ने समाज के विकास को रेखांकित किया था। टेलर के लिए, एक बड़े अक्षर स के साथ संस्कृति, एक एकात्मक इकाई थी जो सभी मानव जाति के लिए आम थी (इंगोल्ड 1986)। समस्या यह थी कि दुनिया भर में संस्कृति की विविधता को समझाया जाए। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में, उपनिवेशीकरण के कारण, पश्चिमी दुनिया, दुनिया भर के समाजों और संस्कृतियों की एक विस्तृत विविधता से अवगत थी। अठारहवीं शताब्दी के सामाजिक दार्शनिक मुख्य रूप से अपने समाज के विकास से चिंतित थे, लेकिन नृविज्ञान वैश्विक संस्कृतियों के अध्ययन के रूप में विकसित हुआ और गैर-पश्चिमी समाजों पर भी ध्यान केंद्रित किया गया। टेलर ने एकान्वयिक विकास का अपना सिद्धांत दिया, जहां उन्होंने संस्कृति के तीन प्रमुख चरणों, जंगलीपन, बर्बरता और सभ्यता को भी चित्रित किया, प्रत्येक ने उनके अनुसार, मानव जाति द्वारा किए गए एक महान परिवर्तन को चिहनित किया। इस प्रकार जंगलीपन से बर्बरवाद में संक्रमण कृषि के आगमन और बर्बरवाद से सभ्यता तक, साक्षरता के साथ आया। उनके लिए संस्कृति मानव मन की उपज थी और यह संदर्भ के बावजूद अपनी तर्कसंगतता के अनुसार विकसित हुई। इस अर्थ में विकासवादी सिद्धांत ने नोमोथेटिक और संदर्भ के स्वतंत्र होने की प्रत्यक्षवादी पद्धति का अनुसरण किया। इसने जैविक सादृश्यता का भी इस हद तक पालन किया कि विकास अपनी स्वाभाविक क्षमता और विकास के नियम के साथ एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी।

जबकि उन्होंने विभिन्न स्रोतों से एकत्र किए गए बड़ी मात्रा में आंकड़ों (डेटा) के माध्यम से छानबीन की, उन्होंने संस्कृति के विभिन्न तत्वों से संबंधित उद्विकास के कई दृश्यों का निर्माण किया। उनके दृश्यों के बारे में सबसे अच्छी तरह से ज्ञातदृश्य धर्म है। टेलर के अलावा, अमेरिका में लेविस हेनरी मॉर्गन भी अपने पूर्ववर्तियों के उद्विकासवादी सिद्धांत से प्रभावित थे और उन्होंने सामाजिक विकास के समानांतर सिद्धांत दिया था जो मूल अमेरिकियों के बीच उनके क्षेत्रकार्य (फील्डवर्क) द्वारा भी सूचित किया गया था।

मॉर्गन का विचार था कि मूल विचार केवल एक बार आते हैं और वे बाद में अपनी आंतरिक क्षमता के अनुसार विकसित होते हैं और एक तार्किक अनुक्रम का पालन करते हैं। मुख्य बातें जो समाज का निर्माण करते हैं, वे हैं भरण पोषण, कानून, विरासत, राजनीतिक संगठन और परिवार से संबंधित विचार। उन्होंने सामाजिक उद्विकास के इतिहास को जातीय काल में विभाजित किया, प्रत्येक अवधि को उनके द्वारा समाज के मूलभूत संरचनाओं के रूप में पहचाने गए प्रत्येक निकाय के उद्विकास के एक विशेष स्तर द्वारा चिह्नित किया गया। उनके अनुसार नृवंशीय अवधियाँ वही हैं जो टेलर द्वारा पहचानी जाती हैं, अर्थात जंगलीपन, बर्बरता और सभ्यता। प्रत्येक स्तर को निर्वाह और तकनीकी विकास के एक विशेष मोड द्वारा चिह्नित किया जाता है जो जीवन के अन्य क्षेत्रों में विकास से मेल खाता है।

नातेदारी अध्ययन के जनक के रूप में पहचाने जाने वाले मॉर्गन, ने एक अधिक स्थूल स्तर पर दो गुना उद्विकासवादी स्कीमा प्रदान किया। सोसाइटीज से लेकर सिविटास तक, यह क्षेत्र और राज्य के आधार पर नातेदारी से संबन्धित समाजों पर आधारित है।

1.5 शास्त्रीय उद्विकासवादी सिद्धांत की सीमा

सारांश में, शास्त्रीय उद्विकासवादी सिद्धांत का एक प्रमुख आधार था, मानव समाज और संस्कृति का अनुकरण। समाजशास्त्रीय सिद्धांत मूलभूत, उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय समाजों के अतीत को समझने का प्रयत्न कर रहे थे और फ्रेंच और अमेरिकी क्रांतियों के काल क्षेत्र में ओर उस समय के अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिक उथल-पुथल में विद्यमान विद्वान सामाजिक परिवर्तन इस प्रक्रिया को समझने की कोशिश कर रहे थे और अध्ययन की वस्तुओं के रूप

में समाजों को संभावना के रूप में देख रहे थे। यह भी धारणा थी कि समाज एक प्राकृतिक व्यवस्था की तरह था जो सभी प्राकृतिक व्यवस्थाओं की तरह समान कानूनों के अधीन था।

दोष उद्विकास के चरणों की काल्पनिक प्रकृति में निहित है जो विशेष रूप से तार्किक भविष्य के चरणों के संदर्भ में सामने रखे गए थे, जिसे उन्होंने इंगित किया था। कॉम्ट के अनुसार भविष्य का औद्योगिक समाज दार्शनिकों के तर्कसंगत, शांतिपूर्ण और आध्यात्मिक होगा और वैज्ञानिक सफल होंगे। इस प्रकार यह विश्वास कि सैन्यवाद अतीत की बात है, दो विश्व युद्धों के कारण और पूरी तरह से बदल गया था कॉम्ट की उम्मीद कि पश्चिमी सभ्यता क्रूर शक्ति से परे तेजी से ऊपर उठेगी जो पूरी तरह से बिखर गई थी।

दूसरी ओर सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के मानवशास्त्रीय सिद्धांत न केवल पश्चिमी समाज बल्कि 'अन्यों' को समझने की कोशिश कर रहे थे। प्रगति की स्टेज स्कीम के अनुसार, उनके पास प्रस्तावित अतिरिक्त अवगुण था, जो सैद्धान्तिक होने के अलावा यूरोकेंट्रिक होने के अलावा था। इस प्रकार प्रगति को केवल उस दूरी या अंतर से मापा जाता था जो किसी भी समाज में बीसवीं सदी के आरंभिक यूरोप से था जो प्रगति के मापन के लिए मानक प्रदान करता था। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, धर्म के उद्विकास के लिए अपने स्कीमा में, टेलर ने शीर्ष पर एकेश्वरवाद रखा था, जिसका अर्थ था कि जूदेव-ईसाई धर्म बहुदेववादी या प्रकृति की पूजा करने वालों से बेहतर थे। सभी स्कीमा में एक प्रमुख दोष यह था कि उन्होंने तकनीकी प्रगति या जटिलता को नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के साथ संयोजित किया। इस प्रकार ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों को केवल इसलिए 'सबसे आदिम' माना गया क्योंकि वे यूरोपीय लोगों से सबसे अलग दिखते थे और इसलिए भी कि उनके पास पत्थर के औजार थे।

बाद में विद्वानों ने इनमें से अधिकांश अटकलों से संघर्ष करने के लिए नृवंशविज्ञान और क्षेत्र डेटा का उपयोग किया। यह महसूस किया गया कि प्रत्येक संस्कृति को केवल प्रासंगिक रूप से समझा जाना था और यह कि तकनीक को मूल्यों और नैतिक व्यवस्थाओं के साथ भ्रमित नहीं होना था। ज्ञान कई रूपों में मौजूद था और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी लोग अपने संदर्भ में तर्कसंगत थे। पॉल रेडिन ने क्रॉस-सांस्कृतिक मान्यताओं पर अपने उत्कृष्ट काम में दिखाया कि हर संस्कृति में सभी प्रकार के लोगों, विश्वासियों, दार्शनिकों, अज्ञेयवादियों, संशयवादियों और गैर-विश्वासियों के अपने हिस्से हैं। हर जगह रीति-रिवाज द्वारा संचालित लोग थे, जो दिए गए मानदंडों के अनुरूप थे और वे जो साधक और निर्माता थे। मैलिनोव्स्की ने दिखाया कि कैसे आदिम जादू, जिसे अंधविश्वास माना जाता है, वास्तव में एक प्रकार्यात्मक व्यवस्था थी जो तर्कसंगत लक्ष्यों तक पहुंचने में मदद करती थी। इस विचार की आलोचना भी थी कि गैर-पश्चिमी लोग उच्च और गूढ़ सोच के लिए अक्षम थे। उदाहरण के लिए नूअर धर्म के अपने अध्ययन में इवांस-प्रिचर्ड ने उनके जटिल दर्शन, गूढ़ विचार की क्षमता और प्रतीकों की जटिल प्रणाली का वर्णन किया है। आदिम 'ऑस्ट्रेलियाई' आदिवासियों के पास विवाह विनिमय की एक जटिल व्यवस्था थी जिसे समझने के लिए विशेषज्ञ गणितीय क्षमताओं की आवश्यकता थी। यहां तक कि तथाकथित 'आदिम' की तकनीकी विशेषज्ञता असाधारण थी। तकनीकी विशेषज्ञता के कई उदाहरण थे कि पश्चिमी लोगों में से अधिकांश को नकल करने और समझने में मुश्किल हुई, जैसे कि बुमेरांग और उनके द्वारा उपयोग किए गए जटिल संजाल।

इन पूर्वधारणा ने स्पष्ट रूप से यूरोसेट्रिक और पूंजीवादी प्रकृति की ओर इशारा करते हुए 'अच्छे जीवन' और 'प्रगति' की अवधारणा के कई समालोचक उत्पन्न किए थे।

1.6 नव-उद्विकासवादी सिद्धांत

साठ के दशक के अंत तक, हालांकि उद्विकास की अवधारणा पर पुनर्विचार हुआ, खासकर विश्व युद्धों के बाद। कुछ विद्वानों ने महसूस किया कि समाजों के उद्विकास की एक सामान्य रेखा के रूप में विकास वास्तविक था और संरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धांत की आलोचना के साथ-साथ बहुत अधिक स्थिर होने और एक ऐतिहासिक परिवर्तन के बाद की उत्तर विश्व युद्ध विश्व के तेजी से परिवर्तनों के संदर्भ में पुनर्जीवित किया गया था।

संस्कृति के लिए प्रमुख नव-उद्विकासवादी सिद्धांतों को जूलियन स्टीवर्ड, लेस्ली व्हाइट और मार्शल सहलिन्स और एल्मन सर्विस द्वारा आगे रखा गया था। तीनों सिद्धांतों के सामान्य कार्य प्रणाली का आधार यह था कि वे सभी विशुद्ध रूप से कटौती के बजाय एक प्रेरक प्रक्रिया के रूप में उद्विकास की समझ बनाने की कोशिश करते थे, जैसा कि विशुद्ध रूप से तार्किक आधार पर आगे बढ़ने वाले शास्त्रीय उद्विकासवादियों की कार्यप्रणाली थी। उन्होंने अनुभवजन्य रूप से एकत्र किए गए आंकड़ों और तथ्यात्मक जानकारी के संदर्भ में समाज के विकास को इसके पर्यावरण और ऐतिहासिक संदर्भ से संबंधित करने की कोशिश की। उनमें से प्रत्येक की संस्कृति की अवधारणा की अपनी व्याख्या भी थी जिसे उन्होंने अपने सैद्धांतिक भूमिका के अनुसार पुनः निर्मित और पुनर्परिभाषित किया।

जूलियन स्टीवर्ड (1955) ने संस्कृति परिवर्तन के अपने सिद्धांत का उल्लेख किया है, जिसे सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के सिद्धांत के रूप में भी जाना जाता है, तथा सिद्धांत और पद्धति दोनों के रूप में। संस्कृति के बारे में उनका विचार एक मूल और एक परिधि के साथ था। संस्कृति के मूल में उस विशेष समाज के निर्वाह गतिविधियों की प्रकृति के आधार पर पर्यावरण के कुछ हिस्सों के साथ अन्तःक्रिया करने वाले तकनीकी-आर्थिक चर शामिल थे। इस मूल संस्कृति का पर्यावरण के साथ एक द्वंद्वात्मक संबंध है। उस रूप में तकनीकी-आर्थिक प्रणाली पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया करती है, यह पर्यावरण को बदल देती है, और परिवर्तित पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया करने के लिए तकनीकी-आर्थिक व्यवस्था फिर से रूपांतरित हो जाती है, और यह प्रक्रिया, जो क्रमिक होती है और लंबी अवधि के काल में फैल जाती है, सामाजिक व्यवस्था के विकास को पूरा करती है।

हालाँकि चूंकि इस प्रकार का उद्विकास पर्यावरणीय परिस्थितियों से सीधे जुड़ा हुआ है, और पर्यावरण दुनिया भर में अलग-अलग हैं, इसलिए यह संभव नहीं है कि उद्विकास की एक रेखा होगी। इस प्रकार स्टीवर्ड ने बहुरेखीय उद्विकास के अपने सिद्धांत को आगे बढ़ाया। उन्होंने कहा कि चूंकि दुनिया के कुछ विशिष्ट पारिस्थितिक क्षेत्र हैं, इसलिए यह संभव है कि कोई व्यक्ति उद्विकास की सामान्य रेखाओं का पता लगा सके, अगर कोई इन क्षेत्रों में उपलब्ध आंकड़ों (डेटा) से उद्विकास की रेखा का पता लगाता है। यह आशा की जानी चाहिए कि इसी तरह की पर्यावरणीय परिस्थितियों में उद्विकास की बड़ी और समान रेखाएँ होंगी। लेकिन स्टीवर्ड सुस्पष्ट थे कि इस तरह की समानताओं को प्रदर्शित करने की आवश्यकता है और उन्हें स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। यह अनुभववाद वह था जिसे उन्होंने अपनी प्रविधि कहा। प्रत्येक अनुक्रम को फिर से संगठित करने के लिए, विशिष्ट तकनीकी और आर्थिक चर जो पर्यावरण चर के साथ अन्तःक्रिया करते हैं, साथ ही साथ पर्यावरण के उन पहलुओं को भी पहचानना होगा जो इन चर के साथ अंतःक्रिया कर रहे हैं। इसके बाद अनुक्रमों का पता लगाना होता है जिसके माध्यम से ये चर परिवर्तित होते हैं।

तकनीकी और आर्थिक कारकों के प्रत्येक समूह में एक प्रकार का अनुकूली तरीका होता है, और केवल कुछ चुनिंदा ऐसे तरीके हैं जो दुनियाभर में मौजूद हैं। इस प्रकार स्टीवर्ड के

अनुसार, उन प्रमुख चर की पहचान कर सकते हैं जो प्रमुख अनुकूली व्यवस्थाओं का गठन करते हैं। उनका सिद्धांत इन व्यवस्थाओं के वर्गीकरण का आधार बन गया। लेकिन बहुपक्षीय उद्विकासवाद का उनका सिद्धांत, हालांकि तार्किक और संभावित, वास्तव में अनुक्रमों को निर्धारित करने की कठिनाइयों के कारण बड़े पैमाने पर पुनर्निर्माण करना मुश्किल हो गया।

लेस्ली व्हाइट (1943) एडलिन बी टेलर के सिद्धांत का एक अनुयायी था। वह भी ज्यादातर टेलर द्वारा दिए गए सिद्धांत में विश्वास करते थे और उन्होंने सोचा कि टेलर पर की गई आलोचना इतिहास और उद विकास की प्रक्रियाओं की गलतफहमी से बाहर थी। उनके अनुसार, उद्विकास नाममात्र और संदर्भ स्वतंत्र है और इसके अपने सामान्यीकृत कानून हैं, जबकि इतिहास संदर्भ विशिष्ट और वैचारिक है। उनका यह भी मानना था कि उद्विकास प्रगतिशील है क्योंकि मानव हमेशा यह चाहता है कि उसका जीवन कैसे बेहतर हो।

उनके अनुसार, टेलर सभ्यता की दिशा में कृषि को पहले कदम के रूप में पहचानने के लिए सही थे लेकिन सभ्यता का विकास लिखित रूप में नहीं हो सकता है लेकिन ऊर्जा के उपयोग में अगले चरण में, भाप इंजन का आविष्कार है। उनके लिए मानव सभ्यता का विकास किसी अमूर्त कारक द्वारा नहीं बल्कि ठोस और भौतिक ऊर्जा के उपयोग से हुआ है। जैसे-जैसे मानव प्रौद्योगिकी अधिक से अधिक ऊर्जा का दोहन करने में सक्षम होती है, यह बढ़ती है और आगे बढ़ती है। जनसंख्या की वृद्धि से बड़ी मात्रा में ऊर्जा का दोहन भी किया जा सकता है, ताकि जहां प्रौद्योगिकी की प्रगति नहीं हो वहां सभ्यता अधिक लोगों के काम करने से बढ़ सकती है। उन्होंने विकास को मापने के लिए एक साधारण समीकरण रखा, जिसका नाम है ई × टी = सी, जो कि एनर्जी × टेक्नोलॉजी = कल्चर है।

उनके मुख्य आलोचक मार्शल सहलिन थे, जिनके अनुसार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ मानव प्रगति की बराबरी करना एक भ्रांति थी क्योंकि प्रौद्योगिकी एक ऐसा उपकरण है जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों क्षमताएँ हैं। युद्ध, उपनिवेश और विनाश भी पश्चिमी सभ्यता के नियंत्रण पर प्रौद्योगिकी के चिह्न थे। फिर से भौतिक प्रगति को खुशी और अवकाश के संदर्भ में जीवन की बेहतर गुणवत्ता के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है (सहलिन्स 1972)।

सहलिंस एंड सर्विस (1960) ने स्वीकार किए गए आधार पर उद्विकास की एक दोहरी योजना का प्रस्ताव किया कि मानव समाज सरल से अधिक जटिल राज्यों में विकसित हुआ है जो जनसंख्या घनत्व और अधिक जटिल संगठनात्मक संरचनाओं द्वारा चिह्नित है, यह मानते हुए कि इनमें से कोई भी परिवर्तन किसी भी मूल्य के साथ है जैसे कि मानव जीवन की प्रगति या बेहतरी जैसे निर्णय। सहलिंस ने संस्कृति की धारणा को भी पुनर्परिभाषित किया कि हम संस्कृति का सामान्य और समग्र दृष्टिकोण रख सकते हैं क्योंकि मानव जाति की बड़ी संस्कृति जो कृषि, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, साक्षरता और प्रौद्योगिकी जैसे उद्विकास के प्रमुख चरणों में बदल गई है। लेकिन बहुमुखी संस्कृतियां स्थानीय वातावरण के उन विशिष्ट अनुकूलनों का उल्लेख करती हैं जो व्यक्तिगत संस्कृतियों और उनकी पहचान और सीमाओं के प्रकार्यात्मक पहलुओं को चिह्नित करते हैं।

सहलिन्स और सर्विस एक पेड़ की कल्पना का वर्णन करने के लिए सामान्य और विशिष्ट उद्विकास के रूप में दो शब्दों का प्रयोग करते हैं। पेड़ का मुख्य तना सामान्य विकास के अनुरूप है, यह बाहर और ऊपर बढ़ता है और केवल एक दिशा लेता है, जबकि विशिष्ट उद्विकास उनके वातावरण के लिए व्यक्तिगत संस्कृतियों के विशिष्ट अनुकूलन को संदर्भित करता है। उदाहरण के लिए, एक वैश्विक घटना के रूप में कृषि का आगमन जनरल

इवोल्यूशन का हिस्सा है, लेकिन एस्किमो का अपने स्थानीय वातावरण में अनुकूलन विशिष्ट विकास का एक उदाहरण है। जबकि विशिष्ट विकास अनुकूलन या संस्कृति के जीवित रहने और जारी रखने की क्षमता से जुड़ा हुआ है, सामान्य उद्विकास अनुकूलनशीलता की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। अनुकूलता एक संस्कृति की क्षमता को अपनी सीमाओं से परे अपने स्वयं के अलावा अन्य स्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए विस्तार करने के लिए संदर्भित करती है। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोपीय लोगों ने अनुकूलन की क्षमता विकसित की, जो कि दुनिया भर में फैलने के लिए, समुद्री यात्रा पर अपनी महारत और बंदूक-पाउडर (चूर्ण) के उपयोग के माध्यम से की। एक संस्कृति के हिस्से पर इस तरह की अनुकूलनशीलता अन्य संस्कृतियों के अस्तित्व के लिए खतरा हो सकती है और इसे 'प्रगतिशील' रूप में नहीं देखा जा सकता है। अनुकूलन क्षमता भी एक अन्य प्रक्रिया की ओर ले जाती है जिसे 'अनुकूली विकिरण' कहा जाता है, इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है कि दुनिया के बड़े हिस्सों में पश्चिम से उपनिवेशीकरण और सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय आबादी में असाधारण उछाल से जब दुनिया का एक बड़ा हिस्सा काला या भूरा होने से सफेद हो गया। आज हमारे एक अमेरिकी का रूढ़िवादी एक श्वेत व्यक्ति है, लेकिन कुछ शताब्दियों पहले, यह मामला नहीं था, दुनिया के उस हिस्से में एक भी श्वेत व्यक्ति नहीं था।

किसी भी प्रजाति या समुदाय द्वारा अनुकूलित विकिरण दूसरों के विलुप्त होने की ओर अग्रसर होता है और यह एक अनुकूल प्रक्रिया नहीं है जो कि उन लोगों को छोड़कर लाभकारी या प्रगतिशील हो जो इसे मास्टर करने में सक्षम हैं। जो लोग अपने प्रभुत्व को फैलाने और स्थापित करने का प्रबंधन करते हैं, फिर अपनी संस्कृति या जीवन के तरीके को भी श्रेष्ठ घोषित करते हैं और उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में न केवल भूमि का अधिग्रहण होता है, बल्कि संस्कृतियों के उन्मूलन और हाशियाकरण होता है, जीवन के तरीके और ज्ञान की प्रणालियाँ भी हाशिये पर होती हैं।

पार्सन्स और लेन्स्की

ये दोनों समाजशास्त्री बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बहुत बाद में आए (पार्सन्स 1966, लेन्स्की 1966), लेकिन सामाजिक उद्विकास की अपनी जो व्याख्या दी वह शास्त्रीय उद्विकासवादियों के समकक्ष हैं। मानवविज्ञानी के बजाय समाजशास्त्री होने के नाते, पार्सन्स ने अकेले पश्चिमी समाज के उद्विकास को देखा। उन्होंने स्पेंसर के समान चरण दर चरण उद्विकासवादी सिद्धांत दिया, लेकिन वह अपने सटीक लौकिक अनुक्रम की तुलना में समाजों की प्रकृति में अधिक रुचि रखते थे। उन्होंने प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए पुरातन समाजों के एक चरण को जोड़ा, जिसमें चीन, भारत, रोम और इस्लामी दुनिया के ऐतिहासिक मध्यवर्ती साम्राज्यों के स्पेन्सर के चरण शामिल थे। चूंकि उद्विकास का मतलब विकास के एक चरण को चित्रित करना है, न कि वास्तविक ऐतिहासिक समय के पैमाने पर, यह बहुत मायने नहीं रखता है क्योंकि आर्कटिक के रूप में नामित दो समाजों की प्रकृति ऐतिहासिक मध्यवर्ती के रूप में नामित समाजों के समान है (कोलिन्स 1997: 17: 17)। अनुक्रमिक चरण के अलावा, पार्सन्स ने वह भी पेश किया जिसे वह – 'सीडबेड सोसायटी' के रूप में कहते हैं जिसने असाधारण इजराइल और ग्रीस जैसी असाधारण रचनात्मक शक्ति दिखाई थी। हालाँकि इन समाजों को आकार और राजनीतिक केंद्रीकरण के संदर्भ में उनके समकालीनों के रूप में विकसित नहीं किया गया था, लेकिन उन्होंने दर्शन, विज्ञान और धर्म के बीज बोए जिसके कारण आधुनिक सभ्यता का विकास हुआ।

लेन्स्की के चरण निर्वाह तरीके (पैटर्न) पर आधारित होते हैं और किसी भी संदर्भ को नैतिक और सांस्कृतिक उद्विकास करने के बजाय विकास की भौतिकवादी रेखा का अनुसरण

करते हैं। वह मुख्य रूप से प्रौद्योगिकियों को संदर्भित करता है और मॉर्गन के निर्वाह के विचारों के अनुक्रम के समान चरणों को बढ़ाता है, और जूलियन स्टीवर्ड द्वारा पहचाने गए अनुकूलन के तरीकों के समान भी है। लेन्स्की ने प्रौद्योगिकियों को यह कहते हुए कुछ हद तक नियतात्मक भूमिका भी दी कि प्रौद्योगिकी समाज के बाकी हिस्सों को प्रभावित करती है ताकि प्रौद्योगिकी का स्तर समाज के अन्य हिस्सों के विकास के स्तर को निर्धारित करे। इस प्रकार, जैसा कि स्टीवर्ड द्वारा भी प्रस्तावित किया गया है और जैसा कि नृविज्ञान द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, शिकार करके खाद्य सामाग्री जुटाने वाली छोटी आबादी होती है, कोई केंद्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था नहीं होती है और सामाजिक असमानता के बहुत कम लोग होते हैं और विरासत, संपत्ति और राजनीतिक संगठनों और इसी तरह के विभिन्न तरीके (पैटर्न) होते हैं। उनका मॉडल यह भी छूट नहीं देता है कि एक प्रकार का निर्वाह एक दूसरे के साथ सह-अस्तित्व में नहीं हो सकता है, जैसे कि चारागाह गतिविधियों के साथ मछली पकड़ना और बागवानी करना। हालांकि निर्वाह के तौर-तरीकों के आधार पर ये वर्गीकरण मानवविज्ञान में सामान्य है लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वे वास्तव में किसी भी ऐतिहासिक अनुक्रम को बनाते हों, एक चरण में दूसरे का पालन जरूरी है या कि लोग एक चरण में हमेशा के लिए नहीं रह सकते हैं। हालाँकि लेन्स्की ने केवल यह कहने के लिए अपना अनुक्रम दिया था कि प्रौद्योगिकी में अगला कदम तब तक संभव नहीं है जब तक कि पहला कदम नहीं होता है, जैसे कि स्थिर कृषि केवल अगोचर कृषि का पालन करेगी। हालाँकि, उनका सिद्धांत जूलियन स्टीवर्ड के विभिन्न तकनीकी-आर्थिक व्यवस्थाओं के पदनाम के समान है जो दुनिया में संभव है। आलोचना यह होगी कि उन्हें केवल एक टाइपोलॉजी के रूप में देखना बेहतर होगा और एक अनुक्रम के रूप में नहीं।

बोध प्रश्न

1) किन ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण मानव समाज के विकास के बारे में प्रारंभिक फ्रांसीसी विचारों का निर्माण हुआ?

2) अगस्त कॉम्ट द्वारा कौन से चरण रखे गए थे? किस तरह से वे इतिहास में नहीं टिक सके?

3) शास्त्रीय उद्विकासवादी सिद्धांत की मुख्य आलोचनाएँ क्या हैं?

4) सांस्कृतिक उद्विकास के सिद्धांतों के कुछ प्रसिद्ध समर्थक कौन थे? उनके सिद्धांत समान और एक दूसरे से भिन्न दोनों कैसे थे?

5) क्या 'प्रगति' उद्विकास की सभी सिद्धांतों के लिए एक अवधारणा थी? उन लोगों के बारे में चर्चा करें, जिन्होंने यह नहीं सोचा था कि सभी परिवर्तन प्रगतिशील थे, भले ही वे जटिलता के कारण बने।

6) बहुरेखीय उद्विकास से आप क्या समझते हैं? यह एकरेखीय उद्विकास से कैसे भिन्न होता है?

7) सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत पर पार्सन्स के योगदान की चर्चा करें।

8) क्या तकनीकी प्रगति और नैतिक उद्विकास के बीच एक कड़ी है? सिद्धांत के संदर्भ में गंभीर रूप से जांच करें।

9) सामान्य और विशिष्ट उद्विकास की अवधारणाओं का वर्णन करें। यह सिद्धांत किसने दिया?

10) उद्विकासवादी सिद्धांत अभी भी सामाजिक और राजनीतिक जीवन में कैसे परिलक्षित होता है? आलोचनात्मक चर्चा करें।

1.7 सारांश

हमने देखा है कि उद्विकासवाद समाज के प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण के एक उद्देश्य का पहला परिणाम था, फिर भी इसके निर्माण और अनुप्रयोग में, यह विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक पद्धति से अपेक्षित निष्पक्षता और तर्कसंगतता के अनुरूप विफल रहा। उद्विकास के अनुक्रम के चरणों का निर्धारण करने में, व्यक्ति स्पष्ट यूरोसेंट्रिक पूर्वाग्रह देख सकता है। जहाँ भी लेखक ने प्रगति का उल्लेख किया है, वह तत्कालीन पश्चिमी समाज का मॉडल रहा है जिसे सभ्यता के शिखर के रूप में रखा गया है। कुछ हद तक, उन्नीसवीं शताब्दी के उद्विकासवाद को उपनिवेशवाद के समर्थक के रूप में भी लिया गया था क्योंकि स्पेंसर, टेलर, मॉर्गन और अन्य के सिद्धांतों के अनुसार पश्चिमी सभ्यताएं अन्य सभ्यताओं, कम विकसित ', 'आदिम संस्कृतियों' पर हावी थीं और वे उन्हें सभ्यता में ले जाने में मदद करें। कई मायनों में समकालीन आबादी को केवल 'आदिम 'के रूप में नामित किया गया था क्योंकि विकासवादी सिद्धांत के अतीत के अवशेषों से वर्तमान में जीवित रहने के कारण उपनिवेशीकरण को उचित ठहराया गया था (कुपर 1958)। विनाशकारी के बजाय, पश्चिमी संस्कृतियों को वास्तव में रचनात्मक और लाभकारी के रूप में देखा गया, यहां तक कि उन्होंने जीवन और लोगों को नष्ट कर दिया (होबार्ट 1993)। हाल ही में भारत सरकार ने पदनाम, आदिम जनजातीय समूहों को विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों में बदल दिया है, लेकिन 'आदिम' शब्द का उपयोग आज भी सत्ता के गलियारों में स्वतंत्र रूप से किया जाता है, विशेषकर पॉलिसियों का निर्माण करते समय, बड़े निगम और मेगा प्रोजेक्ट बांधों और खनन परियोजनाओं के निर्माण के वक्त।

शास्त्रीय उद्विकासवाद का प्रभाव पहले के उपनिवेश सहित दुनिया के अधिकांश लोगों द्वारा निष्पादित किए गए उद्विकास के यूरोसेट्रिक मॉडल में रहता है। समकालीन दुनिया में अधिकांश राज्य अब भी आधुनिकता के भौतिकवादी, लाभ से प्रेरित मॉडल का अनुसरण कर रहे हैं जो उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप द्वारा प्रस्तावित किया गया था और जिसने संयुक्त राज्य अमेरिका के आकार में इसका सबसे प्रतिगामी रूप ले लिया था। यह अब यूरोपीय मॉडल से अधिक अमेरिकी है जो विश्व अर्थव्यवस्था और समाज पर हावी है और जो फिर से बाजार संचालित पूंजीवाद के आधार पर उद्विकास के एक उच्च पक्षपाती मॉडल को सामने रखता है। नस्लवाद जैसा कि उद्विकासवाद जनता के सामूहिक दिमाग का हिस्सा बन गया है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि नीति निर्धारण करने वाले सत्ता धारकों को नीतिगत निर्णय लेने होते हैं। विकास को अभी भी प्रगतिशील और एक तरह से गली के रूप में देखा जाता है जहां अंतिम उत्पाद अमेरिका के पूंजीवादी विस्तार के प्रेरित मॉडल से प्रेरित है। पिछड़ा 'आदिम' के लिए एक और शब्द है।

1.8 संदर्भ

ऐरोन रेमंड (1965). मेन करेंट्स इन सोसिओलोजिकल थॉट.(खंड 1-2), ट्रांस. बाई रिचर्ड हॉवर्ड एंड हेलेन विवर, ग्रेट ब्रिटेनः पेलिकन बुक्स.

कॉलिन्स रंदल(1997). थियरेटिकल सोसिओलोजीः (इंडियन एडिशन), जयपुरः रावत पब्लिकेशन

दुर्खिम ,एमिल (1893 ध1964). द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी, न्यू यॉर्कः फ्री प्रेस

एवान्स प्रिचर्ड (1956). न्यूयर रेलीजन, ऑक्सफोर्डः क्लारेंड्रों प्रेस

एवान्स प्रिचर्ड, ई. ई (1981). ए हिस्टरी ऑफ अंथ्रोपोलोजिकल थॉट. लंदनः बेसिक बुक्स

होबर्ट मार्क (एड). (1993). द ग्रोथ ऑफ इग्नोरेंसय एन अंथ्रोपोलोजिकल क्रिटिक ऑफ डेव्लपमेंट. लंदनः रुतलेज

इनगोल्ड टिम(1982). ईवोलुशन एंड सोसल लाइफ. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवरसिटी प्रेस

कुन, थॉमस एस. (1970). द स्ट्रक्चर ऑफ साईंटिफिक रिवोलुशन. शिकागोः शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस

कूपर, एडम(1958). इन्वेन्शन ऑफ प्रीमिटिव सोसायटी. लंदनः रुतलेज

लीफ मुरे जे (1979). मैन, माइंड एंड सोसायटीः ए हिस्टरी ऑफ अंथ्रोपोलोजी. न्यू यॉर्कः कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस

लेंसकी, गेरहार्ड डी (1966). पावर एंड प्रीविलेजः ए थीयरी ऑफ स्ट्रेटिफिकेशन. न्यू यॉर्कः मेक्ग्राहिल

मेन, हेन्री समनर (1861/1963). एंसिएंट लॉ , बोस्टनः बीकन प्रेस

मलिनोस्की, ब्रोनिसला(1948). मैजिक ,साइन्स एंड रेलीजन. न्यू यॉर्क : डबल डे

नरोल, राउल एंड फ्रादा नरोल(1973). मेन करेंट्स इन कल्चरल अंथ्रोपोलोजी. न्यू जर्सीः प्रेंटिस हाल

पारसंस, टेलकोट (1966). सोसायटीज : कंपरेटिव एंड इवोलुशनरी पेर्स्पेक्टिव्स. एंगलवूड क्रीप्सय प्रेंटिस हाल

रेडीन, पॉल (1927). प्रीमिटिव मैन ऐस फिलोसोफर. न्यू यॉर्क एंड लंदनः डी आपलेटन एंड कंपनी

सहलीन, मार्शल (1972). स्टोन एज एकोनोमिक्स,. शिकागोः एलडीन

सहलीन, मार्शल (1972). एंड एलमन ई सर्विस (1960)(रिप्रिंट1973). इवोलुशन एंड कल्चर. मिशिगनः यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस

स्पेन्सर, हर्बर्ट(1874ध्96). प्रिंसिपल्स ऑफ सोसिओलोजी. न्यू यॉर्कः अपलेटन

स्टीवर्ट, जूलियन (1955). थेओरि ऑफ कल्चर चेंज. इलिनोयः यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोय प्रेस

टोकविल, आलेक्स डे (1852/1955). द ओल्ड रेजिम एंड फ्रेंच रेवोलुशन. न्यू यॉर्क डबल डे

टोनीज , फेर्डिनेंद. (1887/1955). कम्यूनिटी एंड सोसायटी.न्यू यॉर्क हार्पर एंड रो

ह्वाइट, लेसली ए. (1943). " एनर्जि एंड देवोलुशन ऑफ कल्चर "अमेरिकन अंथ्रोपोलोजिस्ट, 45(3): 333-336

विटफोजेल,के. ए (1962). ओरिएंटल डेसपोटिज्म. न्यू हवेनः डेल यूनिवर्सिटी प्रेस

इकाई 2 प्रकार्यवाद*

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रकार्यवाद के संस्थापक

2.1.1 हर्बर्ट स्पेंसर

2.1.2 एमिल दर्खाइम

2.1.3 ब्रानिस्लाव मालिनोवस्की

2.1.4 ए.आर. रैडक्लिफ-ब्राउन

2.3 परवर्ती प्रकार्यवादी

2.3.1 टैल्कोट पार्सन्स

2.3.2 आर.के. मर्टन

2.4 सारांश

2.5 संदर्भ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से, आप जान सकेंगेः

- प्रकार्यवाद की अवधारणा;
- विभिन्न प्रकार्यवादियों का योगदान;
- सामाजिक परिवर्तन के कारण संबंधी कारक;
- सामाजिक परिवर्तन की दर;
- मानव समाज पर सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव; तथा
- सामाजिक परिवर्तन और भविष्य।

2.1 प्रस्तावना

प्रकार्यवाद का अर्थ उस परिप्रेक्ष्य से है जिस तरह से समाजशास्त्र और सामाजिक नृविज्ञान में सिद्धांतों ने सामाजिक संस्थाओं या अन्य सामाजिक घटनाओं को मुख्य रूप से उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के संदर्भ में समझाया है। जब हम कुछ सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक गतिविधि या सामाजिक घटना की बात करते हैं, तो इसका मतलब है कि किसी अन्य संस्था, गतिविधि या समाज के संचालन के लिए इसके परिणाम, जैसे कि, अपराध की सजा का परिणाम या एक अनोखी खोज के लिए वैज्ञानिक को इनाम। उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ सामाजिक विचारकों ने 'जैविक सादृश्य' के संदर्भ में समाज के बारे में सिद्धांत दिया। सादृश्य की यह धारणा जीव विज्ञान से ली गई थी, क्योंकि इसी तरह एक जैविक शरीर रचना है। हम एक समाज को जीव के रूप में मान सकते हैं, जो कई अविभाज्य और अंतर-निर्भर अंगों का एक जटिल रूप है। यह 19वीं सदी की शुरुआत के जैविकता में अपनी

*यह इकाई प्रो. जे.के. पुंडीर, समाजशास्त्र विभाग, चौ. चरण सिहं, विश्वविद्यालय, मेरठ के द्वारा लिखी गई है।

जड़ें रखता है। 'जैविक सादृश्य के इस विचार को शुरु करने वालों में से एक हर्बर्ट स्पेंसर थे। अन्य महत्वपूर्ण प्रस्तावक जिन्होंने सामाजिक संस्थाओं के कार्यों को स्पष्ट रूप से वर्गीकृत किया था, वे फ्रांसीसी समाजशास्त्री एमिल दर्खाइम थे।

सामाजिक कार्यों के संदर्भ में सामाजिक जीवन का अध्ययन करने का विचार बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दिनों में ब्रिटिश सामाजिक मानवविज्ञानियों के मध्य केंद्र बिन्दु था, उनमें प्रमुख थे बी मालिनोवस्की और ए.आर. रैडक्लिफ-ब्राउन। सामाजिक संरचना के साथ, संरचनात्मक-प्रकार्यावाद या संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के विचार दुनिया के विभिन्न हिस्सों में समाजशास्त्र के दृश्य पर हावी थे। अमेरिकी समाजशास्त्र में, समकालीन सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रकाश में, कुछ मूल्यांकन दो प्रमुख समाजशास्त्रियों जैसे टैल्कॉट पार्सन्स और आर.के. मर्टन, इन दो अमेरिकी समाजशास्त्रियों के योगदान को अन्य लोगों के अलावा प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य में मार्ग प्रशस्त करने वाला भी माना जाता है जिन्हें इतनी महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया गया है। नव-प्रकार्यवाद समाज के सिद्धांत के एक बाद और हाल के विचार हैं, जो इस परिप्रेक्ष्य के संस्थापकों के कुछ बुनियादी विचारों को बनाए रखते हैं। यह प्रकार्यवाद की मौजूदा धारणा की सीमाएं पाता है और प्रकार्यवाद के पहले के बुनियादी विचारों का सुधार करता है।

2.2 प्रकार्यवाद के संस्थापक

2.2.1 हर्बर्ट स्पेंसर

हेबर्ट स्पेंसर (1820-1903) एक ब्रिटिश समाजशास्त्री हैं, जिन्हें आमतौर पर समाजशास्त्र के कुछ इतिहासकारों द्वारा ऑगस्ट कॉम्टे के जैविक और विकासवादी दृष्टिकोण के एक निरंतरता के रूप में माना जाता है। लेकिन उनका सामान्य झुकाव कॉम्टे से काफी अलग है। वह खुद दावा करते हैं कि ''कॉम्टे ने 'मानवीय अवधारणाओं की प्रगति' का सुसंगत विवरण देने की कोशिश की, जबकि मेरा उद्देश्य बाहरी दुनिया की प्रगति का एक सुसंगत विवरण देना है ... आवश्यक और वास्तविक चीजों का वर्णन करने के लिए ... घटना की उत्पत्ति की व्याख्या जो प्रकृति का गठन करती है "(कोसर 1996)। जैविक और सामाजिक दोनों समूह के आकार में प्रगतिशील वृद्धि के अनुसार स्पेंसर द्वारा विशेषता बताई गई है। सामाजिक समूह, जैविक की तरह, अपेक्षाकृत समरूप अवस्थाओं से विकसित होते हैं, जिसमें एकभाग दूसरे से अलग-अलग अवस्थाओं में मिलते-जुलते हैं ... एक बार जब अंग विपरीत हो जाते हैं, तो वे परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं (पूर्वोक्त)। इस प्रकार, बढ़ते विभेदन के साथ निर्भरता बढ़ती है और इसलिए एकीकरण होता है। बड़े पैमाने पर समाजशास्त्रियों ने हर्बर्ट स्पेंसर को एक उद्विकासीय समाजशास्त्री माना है, लेकिन बढ़ते विभेदन के साथ अंगों के बारे में उनका मूल विचार अन्योन्याश्रित हो गया है और एकीकरण के लिए काम करने या परिणामस्वरूप होने वाले जीवों के ''संरचनात्मक प्रकार्यात्मक'' तत्वों की उत्पत्ति को एक जीवित पूर्णत्व के रूप में समाज के सिद्धांत को दर्शाता है। इस तरह के लेखन के आधार पर यह कहा जाता है कि सामाजिक प्रकार्य की अवधारणा उन्नीसवीं सदी में सबसे स्पष्ट रूप से हेबर्ट स्पेंसर द्वारा तैयार की गई थी। सामाजिक संरचना और सामाजिक कार्य का यह विश्लेषण उनके द्वारा प्रसिद्ध पुस्तक, समाजशास्त्र के सिद्धान्त में उनके द्वारा प्रदान किया गया है। इसमें समाजशास्त्र में सामाजिक कार्य को वर्गीकृत करने का पहला विचार शामिल है (बॉटमोर 1975)। बाद में इसे उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अन्य समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानवविज्ञानियों द्वारा व्यवस्थित, कठोर और स्पष्ट रूप से लिया गया। प्रकार्यवाद पर हर्बर्ट स्पेंसर के मुख्य विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

1) समाज एक व्यवस्था (एक जैविक पूर्ण या शरीर रचना) है। यह जुड़ा हुआ और अन्योन्याश्रित भागों का एक सुसंगत संपूर्ण भाग है।

2) इस व्यवस्था को केवल विशिष्ट संरचनाओं के संचालन के संदर्भ में समझा जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक में सामाजिक संपूर्ण को बनाए रखने के लिए एक प्रकार्य है।

3) व्यवस्था की जरूरते होती हैं जिसे किव्यवस्था के जीवित रहने (यानी समाज की निरंतरता) के लिए संतुष्ट होना चाहिए। इसलिए किसी संरचना की कार्यप्रणाली को उसके द्वारा संतुष्ट की गई जरूरतों को समझकर निर्धारित किया जाना चाहिए।

हालाँकि, हर्बर्ट स्पेंसर को समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद के सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से तैयार करने का श्रेय दिया जाता है, लेकिन वे सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं आदि के बारे में अपने विचारों को लेकर विवादास्पद बने हुए हैं, जिसके लिए उन्होंने एक जैविक जीव के समान एक सामाजिक जीव पर विचार किया औरइसके विकास का विश्लेषण भी किया। जिससे उन्हे स्वभावतः प्रकार्यात्मक नहीं बल्कि एक उद्विकासवादी माना जाता है। अपने जीवनकाल के दौरान उनके कई प्रकाशनों में से, समाजशास्त्रियों के बीच प्रसिद्ध सबसे महत्वपूर्ण किताबें ''समाजशास्त्र का अध्ययन'' और ''समाजशास्त्र के सिद्धांत'' (1870-1880 के दशक के दौरान प्रकाशित) हैं। उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल, हक्सले और अन्य जैसे मूल विचारकों का सम्मान हासिल किया।

2.1.2 एमिल दर्खाइम

डेविड एमिल दर्खाइम (1858-1917) एक फ्रांसीसी समाजशास्त्री है जिसे आम तौर पर फ्रांसीसी समाजशास्त्र के संस्थापक के रूप में माना जाता है और साथ ही साथ उनके प्रयासों से समाजशास्त्र एक अलग अनुशासन के रूप में माना जाता है। उन्होंने समाजशास्त्रीय सिद्धांत के साथ अनुभवजन्य अनुसंधान को मिलाकर एक कठोर पद्धति विकसित की। उनका काम इस बात पर केंद्रित था कि पारंपरिक और आधुनिक समाज कैसे विकसित और कार्य करते हैं। उनके कई लेखों से दुनिया भर के समाजशास्त्रियों के बीच चार पुस्तकें सबसे मूल्यवान हैं, जैसे कि द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी, द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड, ले सुसाइड, और ऐलिमेंटरी फार्म ऑफ रिलिजियस लाइफ। एमिल दर्खाइम ने स्पष्ट रूप से समाजशास्त्र और इसकी कार्यप्रणाली के विषय को रेखांकित किया। उन्होंने हर्बर्ट स्पेंसर के योगदान से चुनिंदा विचारों को उधार लिया था। उन्होंने (सामाजिक) कार्यों की अवधारणा को स्पष्ट रूप से उन्नत किया और एक सुसंगत, स्पष्ट और न्यायपूर्ण सिद्धांत में कार्यात्मकता की स्थापना की। उन्होंने अपने प्रसिद्ध काम, ''समाज में श्रम का विभाजन'' में कार्यों की स्पष्ट-अवधारणा की स्थापना की, जिसमें उन्होंने समाज में (या पूरे समाज के लिए) श्रम के विभाजन के कार्यों का अध्ययन किया।

इससे पहले कि हम इन कार्यों का संक्षेप में वर्णन करें, आइए हम पहले देखें कि वह कैसे कार्यों को परिभाषित करते हैं। अपनी पुस्तक 'डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी ' में, उन्होंने प्रकार्य (फंक्शन) की अवधारणा के पहले स्पष्ट फॉर्मूले को अपनाया। उनके अनुसार सामाजिक संस्था का कार्य इसके (संस्थान) और सामाजिक जैविकी की आवश्यकता के बीच का अनुकूलता है (सामाजिक जीवों की यह समानता स्पेंसर से ली गई है)। इसका मतलब है कि एक सामाजिक संस्था समाज की आवश्यकता को पूरा करती है। तब समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता क्या है? वह इस अध्ययन में इस मुद्दे को उठाते हैं। समाज की महत्वपूर्ण या महत्वपूर्ण आवश्यकता, उसके अनुसार, समाज में एकजुटता का रखरखाव है (दूसरे शब्दों में, समाज का एकीकरण)। एक सामाजिक संस्था के रूप में श्रम विभाजन का अध्ययन करते हुए, वह सवाल पूछते हैं, 'समाज में श्रम विभाजन का कार्य क्या है'? वह इस

मुद्दे को समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता के संदर्भ में संबोधित करते हैं। दर्खाइम के लिए, सामाजिक एकजुटता समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। औद्योगिक समाज में श्रम का विभाजन (जैसा कि पश्चिमी यूरोप में था, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दौरान) इस सामाजिक एकजुटता को आधार प्रदान करता है। सरल समाजों की तुलना में ये तेजी से विभेदित समाज हैं। दर्खाइम एकजुटता को महत्त्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि समाज में एकजुटता बनाए रखने के बिना समाज टूट सकता है और कदाचित समाज ही न रहे।

अपने बाद के काम (अंतिम पुस्तक), ''धार्मिक जीवन के प्राथमिक रूपों'' में, वह धर्म के कारणों और कार्यों का अध्ययन करने का कार्य करते है। दर्खाइम का तर्क है कि समाज को विनियमित करने के लिए धर्म महान स्रोतों में से एक है, इस प्रकार यह एकजुटता बनाए रखने के कार्य को पूरा करता है। धर्म लोगों को विचारों (सामूहिक चेतना) की एक सामान्य व्यवस्था में एकजुट करता है जो तब सामूहिक मामलों को नियंत्रित करता है। उनका विचार है कि यदि समाज में एकजुटता बनाए रखने की महत्वपूर्ण आवश्यकता पूरी नहीं हुई है, तो, पैथोलॉजिकल (असामान्य) रूप जैसे 'एनोमी' होने की संभावना है। यह वह परिप्रेक्ष्य है जो समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों से अलग करता है। उन्हें समाजशास्त्र में का प्रर्यात्मक दृष्टिकोण या सिद्धांत का संस्थापक जनक माना जाता है। लेकिन कुछ सामाजिक चिंतक मानते हैं कि उनकी कार्यक्षमता विकासवादी सिद्धांत में निहित है, और इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह कुछ हद तक सही प्रतीत होता है। लेकिन समाजशास्त्र को अपनी विषय वस्तु और पद्धति के साथ एक अलग अनुशासन के रूप में स्थापित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। इसी तरह, समाज को प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण से स्थापित करना भी उसकी उपलब्धि है।

2.2.3 ब्रानिस्लाव मालिनोवस्की

ब्रॉनिस्लाव मैलिनोवस्की (1884-1942) एक ब्रिटिश सामाजिक मानव विज्ञानी है जो अपने के सिद्धांत के लिए अच्छी तरह से जाने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे एमिल दर्खाइम, सी.जी. सेलिगमैन और ई. वेस्टरमार्क से अकादमिक रूप से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने कई सामाजिक नृविज्ञानियों को प्रभावित किया, और उनके प्रभाव में उन्होंने विशेष समाजों में वास्तविक व्यवहार के विस्तृत और सावधानीपूर्वक वर्णन के लिए खुद को समर्पित किया। उनके प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण ने सामाजिक व्यवहार के सटीक अवलोकन और अभिलेखन (रिकॉर्डिंग) को शामिल करते हुए क्षेत्र कार्य पर जोर दिया। उन्होंने मुख्य रूप से 'प्रतिभागी अवलोकन' पद्धति का उपयोग करके अपने दृष्टिकोण को अपनाकर ट्राब्रिएंड आइलैंडर्स का अध्ययन किया। उनकी पुस्तक, पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र के अरगोनाट्सृ ट्रोब्रिएंड आइलैंडर्स पर उनके क्षेत्र कार्य का नतीजा है। इस शास्त्रीय पुस्तक के प्रकाशन ने उन्हें एक विश्व प्रसिद्ध मानवविज्ञानी के रूप में प्रसिद्धि दिलाई। यह ट्रोब्रिएंडर्स की संस्कृति के इस विस्तृत और सावधानीपूर्वक वर्णन से था कि वे उद्विकसवादी सिद्धांत (इवोल्यूशनरी थ्योरी) और पहले के समाजशास्त्रियों और मानवविज्ञानियों और उनके अद्वितीय प्रकार्यवाद के तुलनात्मक तरीके के खिलाफ दृढ़ता से सामने आए। उन्होंने बाद के लेखन में, 'साइंटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर' में प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का वैचारिक सूत्रीकरण किया। उन्होंने तर्क दिया कि 'प्रत्येकश्सांस्कृतिक आइटम संस्कृति-संपूर्ण के रखरखाव में योगदान देता है। यह इस प्रकार इस पूर्ण की कुछ जरूरतों को पूरा करता है। वह आगे कहते हैं कि 'प्रत्येक सांस्कृतिक वस्तु कुछ महत्वपूर्ण कार्य पूर्ण करती है'। मैलिनोव्स्की ने प्रकार्य की अवधारणा का उपयोग करते हुए सुझाव दिया कि समाज (उनके लिए संस्कृति विषय) अन्योन्याश्रित भागों (उसकी अवधि - सांस्कृतिक वस्तुओं) से बना है, के रूप में समझा जा सकता है जो विभिन्न सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक साथ काम करते हैं।

मैलिनोवस्की के प्रकार्यवाद ने दो नए विचारों को जोड़ाः (i) व्यवस्था स्तरों की एक धारणा, और (ii) प्रत्येक स्तर पर विभिन्न और कई व्यवस्थाओ की अवधारणा। उनके अनुसार, तीन व्यवस्था स्तर हैंः जैविक, सामाजिक संरचनात्मक और प्रतीकात्मक।

मैलिनोव्स्की अपने कार्यों और तरीकों के साथ संस्कृति के समग्र (या समग्रता) के अध्ययन पर जोर देते हैं। उन्होंने जांच की, समझाया और विश्लेषण किया कि संस्कृति क्यों और कैसे कार्य करती है, संस्कृति के विभिन्न तत्व एक संपूर्ण सांस्कृतिक तरीके से कैसे संबंधित हैं। उनके लिए, प्रकार्यवाद संस्कृति के एकीकृत संपूर्ण संस्कृति के अंदर संस्थानों को समझाने का प्रयास करते हैं। संस्थाएँ एक पूर्ण के रूप में व्यक्तियों और समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए काम करती हैं। मालिनोवस्की का मानना है कि संस्कृति के हर पहलू (तत्व) का एक कार्य है और वे सभी अन्योन्याश्रित और परस्पर संबंधित हैं। इसलिए, मानव के अस्तित्व को बनाए रखने में उनके बीच एक प्रकार्यात्मक एकता देखी जा सकती है।

मैलिनोव्स्की का मूल तर्क इस आधार पर है कि संस्कृति के हर पहलू में एक प्रकार्य है, अर्थात् एक आवश्यकता की संतुष्टि। वह आवश्यकताओं के तीन स्तरों की पहचान करता हैरू (i) प्राथमिक (ii) संस्थागत और (iii) एकीकृत। प्राथमिक जरूरतें काफी हद तक जैविक जरूरतें जैसे सेक्स, भोजन और आश्रय हैं। संस्थागत आवश्यकताएं वे संस्थान (आर्थिक, कानूनी आदि) हैं जो प्राथमिक जरूरतों को पूरा करने में मदद करते हैं। एकता की आवश्यकताएं उन आवश्यकताओं को संदर्भित करती हैं जो समाज को धर्म जैसे सुसंगतता बनाए रखने में मदद करती हैं। कुछ समाजशास्त्री मानते हैं कि मालिनोवस्की का प्रकार्यवाद व्यक्तिवादी-प्रकार्यवाद था क्योंकि यह व्यक्तियों की मूलभूत जैविक आवश्यकताओं पर केंद्रित था। कुछ अन्य लोग भी उसके कार्यात्मक दृष्टिकोण को 'शुद्ध प्रकार्यवाद' के रूप में मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि उनके प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण में हर समाज के प्रकार्यात्मक एकीकरण का एक मजबूत आग्रह शामिल था।

2.1.4 ए.आर. रैडक्लिफ-ब्राउन

अल्फ्रेड रेजिनाल्ड रेडक्लिफ-ब्राउन (1881-1955) एक ब्रिटिश सामाजिक नृविज्ञानी है, जिनके प्रकार्यवाद के सिद्धांत (संरचनात्मक-प्रकार्यात्मकता) कुछ हद तक मालिनोवस्की से भिन्न हैं। कहा जाता है कि वे एमिल दर्खाइम की कार्यक्षमता से काफी प्रभावित थे। वह स्पष्ट करते हैं कि प्रकार्यवाद में जैविक अनुरूपण की कुछ समस्याओं को कैसे दूर किया जा सकता है। वह पहचानते है कि ''प्रकार्य की अवधारणा सामाजिक जीवन और जैविक जीवन के बीच समानता पर आधारित है''। उनका मानना है कि प्रकार्यवाद के साथ गंभीर समस्या प्रयोजनमूलकता के प्रकट होने के लिए विश्लेषण की प्रवृत्ति थी। दर्खाइम की प्रकार्य की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए 'जिस तरह से एक हिस्सा (एक सामाजिक संस्था) एक व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करता है', रैडक्लिफ-ब्राउन ने जोर दिया कि 'अस्तित्व की आवश्यक स्थिति' द्वारा 'जरूरत' शब्द के विकल्प के लिए आवश्यक होगा। यह उनका प्रयास था कि प्रकार्यवाद के प्रयोजनमूलक निहितार्थों से बचा जाए। इस प्रकार, वह 'अस्तित्व की आवश्यक स्थिति' द्वारा दर्खाइम के द्वारा द्वारा दी गई 'जरूरत' शब्द को बदल देते हैं। उनके लिए प्रश्न यह है कि अस्तित्व के लिए कौन सी शर्त आवश्यक हैं और यह मुद्दा एक अनुभवजन्य होगा। प्रत्येक दी गई सामाजिक व्यवस्था के लिए इसे खोजना होगा। वह मानते हैं कि विभिन्न व्यवस्थाओं के अस्तित्व के लिए आवश्यक स्थितियों की विविधता है। वह इस दावे से बचते हैं कि संस्कृति के प्रत्येक विषय (जैसा कि मालिनोवस्की द्वारा माना जाता है) में एक प्रकार्य होना चाहिए और विभिन्न संस्कृतियों में विषय का एक ही प्रकार्य होना चाहिए।

रेडक्लिफ-ब्राउन का मानना है कि यह एक विलक्षण प्रकार्यात्मक विश्लेषण नहीं है, बल्कि संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण है, जिसमें कई महत्वपूर्ण धारणाएं हैं – (1) किसी समाज के अस्तित्व के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि उसके भागों का न्यूनतम एकीकरण हो, (2) प्रकार्य शब्द उन प्रक्रियाओं के लिए संदर्भित करता है जो इस आवश्यक एकीकरण या एकजुटता को बनाए रखते हैं। (3) इस प्रकार, प्रत्येक समाज में संरचनात्मक सुविधाओं को आवश्यक एकजुटता के रखरखाव में योगदान करने के लिए दिखाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण में, रैडक्लिफ-ब्राउन के अनुसार, सामाजिक संरचना और इसके अस्तित्व के लिए आवश्यक स्थितियाँ अप्रासंगिक हैं।

इस पूरे विश्लेषण और समझ में, दर्खाइम की तरह, रेडक्लिफ-ब्राउन ने समाज को स्वयं में एक वास्तविकता के रूप में देखा। इस कारण से वह सांस्कृतिक विषयों, जैसे कि नातेदारी नियमों और धार्मिक अनुष्ठानों की कल्पना करते थे, सामाजिक संरचना के संदर्भ में, विशेष रूप से इसकी एकजुटता और एकीकरण की आवश्यकता के रूप में। रेडक्लिफ-ब्राउन ने कुछ न्यूनतम स्तर की एकजुटता को मान ली है जो व्यवस्था में मौजूद होनी चाहिए। उन्होंने इस एकजुटता को बनाए रखने के लिए उसके परिणामों के संदर्भ में वंश व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। अपने अध्ययन 'द अंडमान आइलैंडर्स 'में, वह नृत्य और विलाप के समारोह का विश्लेषण करते है। ये समारोह, जो दोहराए जाते हैं, टकराव की स्थिति में निर्णय देते हैं, और इस प्रकार व्यवस्था की एकजुटता (समुदाय का, जो छोटे संघर्षों के कारण कुछ समय के लिए अलग हो जाते हैं) को फिर से स्थापित करते हैं।

रेडक्लिफ-ब्राउन का मानना है कि 'सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक एकता (एकीकरण या एकजुटता) बेशक एक परिकल्पना है '। वह अंत में मानते हैं कि प्रकार्य वह योगदान है जो एक आंशिक गतिविधि पूर्ण गतिविधि (संपूर्ण) के लिए करता है, जिसका कि वह एक हिस्सा है। सभी आंशिक गतिविधियों (भागों) पूरे के रखरखाव में योगदान करते हैं और एक प्रकार की एकता लाते हैं जिसे जीव की सामाजिक एकता कहा जाता है। उन्हें प्रकार्यवादी के रूप में जाना जाता है, लेकिन उनका प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण पूरी तरह से संरचना से संबंधित है। प्रकार्य की अवधारणा पर उनका विशिष्ट लेखन उनके प्रसिद्ध कार्य 'स्ट्रक्चर एंड फंक्शन प्रीमिटिव सोसाइटी' में उपलब्ध हैं।

2.3 परवर्ती प्रकार्यवादी

2.3.1 टैल्कोट पार्सन्स

टैल्कोट पार्सन्स (1902-1979) एक प्रमुख अमेरिकी समाजशास्त्री हैं जो शायद बीसवीं शताब्दी के सबसे प्रमुख सिद्धांतकार हैं। पार्सन्स की प्रकार्यवाद ने प्रारंभिक प्रकार्यात्मक विश्लेषण की विचारशीलता को शामिल करने का प्रयास किया है, विशेष रूप से सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को परस्पर हिस्सों के रूप में शामिल किया गया है। प्रकार्यात्मक सिद्धांत के मौजूदा रूपों ने प्रयोजनमूलकता और पुनरुक्ति की विश्लेषणात्मक समस्याओं का सामना करने की कोशिश की है, जिसे दर्खाइम और रेडक्लिफ-ब्राउन ने असफल रूप से बचने की कोशिश की। 19वीं शताब्दी के जैविकता को उधार लेने और व्यवस्थागत रूप से विचार करने की व्यवस्था की एकता के रूप में लाभ उठाने के लिए व्यवस्थित पूर्ण के संचालन के निहितार्थ, पार्सन्स और अन्य के इस आधुनिक प्रकार्यात्मकता ने एकीकृत वैचारिक दृष्टिकोण के साथ प्रारंभिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत प्रदान किया।

1950 से 1970 के दशक में पार्सोनियन प्रकार्यवाद स्पष्ट रूप से एक केंद्र बिंदु था जिसके आसपास तार्किक विवाद व्याप्त था। परवर्ती काल में भी, पार्सोनियन प्रकार्यवाद गहन विवाद

का विषय बना हुआ है। 1937 में, उनका प्रमुख कार्य 'द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन' प्रकाशित हुआ और अगले चार दशकों तक उनके विचारों का बोलबाला रहा। उनका मूल विचार अभिकर्ताओं की कार्रवाई के अनुक्रम में निहित था। कुछ मानदंडों, मूल्यों और अन्य विचारों (व्यवस्था में उपलब्ध) के बाद एक अभिकर्ता स्थितिजन्य परिस्थितियों में काम करके लक्ष्यों (सामाजिक लक्ष्यों, व्यक्तिगत लक्ष्यों को शामिल) को प्राप्त करने की दिशा में उन्मुख है। ये कार्य व्यवस्था को जन्म देते हैं। सामाजिक क्रिया या 'सामाजिक व्यवस्था'का यह 'व्यवस्था' उनके प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रमुख शब्द है। सामाजिक व्यवस्था में स्थितियों, भूमिकाओं और मानदंडों का समावेश होता है। उनके अनुसार, अभिकर्ता उद्देश्यों (जरूरतों) के संदर्भ में स्थितियों के लिए उन्मुख होते हैं। उद्देश्य (या आवश्यकताएं) मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैंः (1) संज्ञानात्मक (सूचना या ज्ञान की आवश्यकता), (2) कैथेटिक (भावनात्मक लगाव की आवश्यकता) और (3) मूल्यांकन (मूल्यांकन की आवश्यकता)। इसके अलावा, पार्सन्स प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं की धारणा देता है। दर्खाइम और रेडक्लिफ-ब्राउन के नेतृत्व के बाद, वह एक बुनियादी अस्तित्व के लिए एकीकरण (भीतर और कार्य व्यवस्था के बीच) को मूल सामाजिक आवश्यकता मानता है (जो सामाजिक प्रणाली की आवश्यकता है, या सरल शब्दों में, समाज की आवश्यकता है)। वह स्वयं सामाजिक व्यवस्था के भीतर एकीकरण से संबन्धित हैं और एक ओर सांस्कृतिक व्यवस्था और दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था और व्यक्तित्व व्यवस्था के मध्य संबंध रखता है। उनके विश्लेषण में सामाजिक व्यवस्था , सांस्कृतिक व्यवस्था और व्यक्तित्व व्यवस्था ये तीन व्यवस्थएँ महत्वपूर्ण हैं। उनकी वैचारिक योजना सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्थित अंतर्संबंध को दर्शाती है। बाद में वह संस्कृति और व्यक्तित्व की एकीकृत समस्याओं की ओर लौटता है।

सामाजिक व्यवस्थाओं की उनकी अवधारणा के लिए एक और संबंधित अवधारणा, संस्थागतकरण की अवधारणा है। जैसे ही अन्तःक्रिया संस्थागत हो जाए, तो उसे सामाजिक व्यवस्था का अस्तित्व कहा जा सकता है। उनके अनुसार, संस्थागतकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सामाजिक संरचना का निर्माण और रखरखाव होता है। भूमिकाओं के संस्थागत समूह, अर्थातअंतःक्रिया के स्थिर तरीके में एक सामाजिक व्यवस्था शामिल है। सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए उन्होंने इसके संरचनात्मक तत्वों और प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं पर विचार किया। संरचनात्मक तत्व लक्ष्य, भूमिका, मानदंड और मूल्य हैं। सामाजिक व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए, प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में आवश्यक रूप से प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ होती हैं, अर्थात, सामाजिक प्रणाली के क्षेत्र या परिधि के भीतर संस्थागत अंग (या उप व्यवस्थाएँ)। इसे वे एक रूप तालिका में प्रस्तुत करते है जिसे 'AGIL' रूप तालिका के रूप में जाना जाता है।। अनुकूलन के अर्थ में है, G लक्ष्य प्राप्ति के लिए है, I एकीकरण के लिए और L अव्यक्तता के लिए (यानी ढांचा रखरखाव और तनाव प्रबंधन)। बुनियादी जरूरतों – भोजन, आश्रय आदि की पूर्ति के लिए समाज में अनुकूलन एक व्यवस्था है। उसके अनुसार, अर्थव्यवस्था या आर्थिक उप-व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं को पूरा करती है। यह उपव्यवस्था हमेशा सभी समाजों में उपलब्ध होती है। लक्ष्य प्राप्ति एक ऐसी व्यवस्था है जो इन लक्ष्यों को निर्धारित करने के तरीके के साथ संबन्धित है। वह व्यक्तिगत और सामूहिक लक्ष्यों में अंतर करते हैं उनका जोर बड़े पैमाने पर सामूहिक लक्ष्यों पर रहता है। राजनीति या राजनीतिक उप व्यवस्था (सामाजिक व्यवस्था की एक उप व्यवस्था के रूप में) संदर्भ के भीतर लक्ष्य प्राप्ति की आवश्यकता को पूरा करती है। एकीकरण सामाजिक व्यवस्था की एक और महत्वपूर्ण जरूरत है। यह संस्थागत व्यवस्था (जैसे और सबसे महत्वपूर्ण) धर्म द्वारा किया जाता है। इस प्रकार, उनके विचार में, धर्म समाज में एकीकरण बनाए रखने की आवश्यकता से मेल खाती है। यदि कोई नियंत्रण नहीं है तो किसी भी व्यवस्था को जारी और बनाए नहीं रखा जा सकता है। यदि विचलन या संघर्ष हैं, तो सामाजिक प्रणाली में इन सभी को समाहित करने की क्षमता होनी चाहिए।

पार्सन्स के रूपतालिका में अव्यक्तता कानून की संस्थाओं - कानूनी अदालतों, पुलिस और प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा नियंत्रित की जाती है। इस प्रकार, कानूनी व्यवस्था (एक उपव्यवस्था के रूप में) अव्यक्तता की आवश्यकता को पूरा करती है।

जब एक दी गई सामाजिक व्यवस्था बड़ी होती है और इसमें कई अंतर्संबंधित संस्थान शामिल होते हैं, तो इन्हें आमतौर पर उपव्यवस्था के रूप में देखा जाता है। उपर्युक्त AGIL इस प्रकार, अंतःसंबंधित उपव्यवस्थाओं का एक उदाहरण है। पार्सन्स के अनुसार यह याद रखना आवश्यक है कि एक सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक प्रतिमानों से परिचालित है और व्यक्तित्व की व्यवस्थाओं से ओत-प्रोत है। इस प्रकार, पार्सन्स दर्खाइम और रेडक्लिफ-ब्राउन द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यवाद से बहुत आगे निकल जाते हैं। जोनाथन टर्नर के अनुसार चार प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं का विकास - ए, जी, आई और एल - पहले के कार्यों से महत्वपूर्ण प्रस्थान नहीं है। यह सच है कि संरचनाओं को चार आवश्यक कार्यों को पूरा करने के लिए उनके प्रकार्यात्मक परिणामों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से देखा जाता है। इससे सामाजिक व्यवस्था को जीवित रहने की क्षमता बढ़ जाती है और पार्सोनियन योजना एक विस्तृत मैपिंग ऑपरेशन की तरह लगने लगती है। बेशक, पारसोनियन प्रकार्यवाद पर बहुत आलोचना की गई है, लेकिन अधिकांश सैद्धांतिक वांछनीय विकल्प अपने सिद्धांत से कुछ सूत्र लेते हैं, चाहे सभी या कुछ हिस्सों को अस्वीकार करते हैं। इस प्रकार, उनका प्रकार्यवाद बीसवीं शताब्दी का एक प्रसिद्ध सैद्धांतिक रूप है।

2.3.2 आर.के. मर्टन

रॉबर्ट किंग मर्टन (1911-2003) एक प्रसिद्ध अमेरिकी समाजशास्त्री हैं, जिन्होंने अपने संस्थापकों जैसे दर्खाइम, रैडक्लिफ-ब्राउन और मालिनोवस्की द्वारा उन्नत प्रकार्यवाद की कमियों को दूर करने का प्रयास किया। वह दो महान अमेरिकी समाजशास्त्रियों में से एक हैं जिन्होंने टालकोट पार्सन्स के साथ-साथ बीसवीं शताब्दी के मध्य काल के दौरान प्रकार्यात्मक सिद्धांत के परिदृश्य पर हावी थे। उन्होंने 'प्रकार्य' के बहुत व्युत्पत्तिपरक अर्थों के साथ शुरुआत की और शुरुआती समाजशास्त्रियों द्वारा अपनाए जा रहे शब्द के प्रामाणिक और प्रासंगिक अर्थों को अलग कर दिया। इस अर्थ में, प्रकार्य 'महत्वपूर्ण या जैव प्रक्रिया के संदर्भ में माना जाता है जिसमें वे शरीर रचना के रखरखाव में योगदान करते हैं। यह अर्थ उस तरीके को बताता है जिसमें जीव विज्ञान में इसका उपयोग किया गया है। उन्होंने कहा कि मानव समाज (एक जीव के रूप में) के अध्ययन के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ, यह उपयोग है, जिसे प्रारंभिक समाजशास्त्री दर्खाइम और रेडक्लिफ-ब्राउन ने अपनाया है और इस प्रकार प्रमुख अवधारणा, 'प्रकार्य' को स्पष्ट किया है। मेर्टन के अनुसार, रैडक्लिफ-ब्राउन जैविक क्रियाकलापों में पाए जाने वाले सादृश्य मॉडल के सामाजिक कार्य की अवधारणा के कार्य को प्रस्तुत करने में स्पष्ट रहे हैं। दर्खाइम ने 'महत्वपूर्ण जैविक प्रक्रियाओं और शरीर रचना की आवश्यकता' का भी जिक्र किया। बेशक, रैडक्लिफ-ब्राउन यह कहते हुए आगे बढ़ते हैं किसी भी आवर्तक गतिविधि का प्रकार्य सामाजिक जीवन का वह हिस्सा है जो समग्र रूप से और संरचनात्मक निरंतरता के रखरखाव में योगदान देता है। लेकिन वह सब सामाजिक जीव (एक समाज) और भागों (समाज में गतिविधि या संस्था) के बीच समानता पर आधारित था। पहले के सिद्धांतकारों ने प्रकार्यवाद के खिलाफ भी आरोप लगाया गया था कि प्रकार्यवाद केवल रखरखाव पर ध्यान देती है, अर्थात, स्थिरता, और समझ में बदलाव की कोई गुंजाइश नहीं थी, और यह अवधारणा केवल सरल समाजों के लिए लागू की गई थी।

मर्टन ने अपने सुधार या प्रकार्य की अवधारणा के संशोधन में इन सीमाओं को संबोधित किया। वह प्रकार्य की अवधारणा को स्पष्ट करता है 'यह वह अवलोकित परिणाम है जो किसी व्यवस्था के अनुकूलन या समायोजन के लिए बनते हैं'।

मर्टन का विचार था कि प्रकार्य की पहले की परिभाषा में समस्या थी जो बताती है कि प्रकार्य वे अवलोकन परिणाम हैं जो किसी व्यवस्था के अनुकूलन या समायोजन के लिए बनते हैं '। उनके अनुसार, सामाजिक या सांस्कृतिक व्यवस्था में किसी वस्तु के केवल सकारात्मक योगदान का निरीक्षण करने की परिभाषा में एक प्रवृत्ति रही है जिसमें उसका निहितार्थ है। लेकिन वह दावा करते हैं कि कम से कम कुछ सामाजिक या सांस्कृतिक विषयों के कुछ योगदान हैं, जो एक परिणाम के रूप में अन्यथा, अर्थात, वे अनुकूलन या समायोजन के लिए एक बाधा या रुकावट बन जाते हैं। इस संभावना को ध्यान में रखते हुए (जो कि समय-समय पर सत्यापन योग्य है), उन्होंने 'शिथिलता' का प्रतिकूल अवधारणा प्रस्तुत किया। वह 'उन अवलोकित परिणामों के रूप में शिथिलता को परिभाषित करते हैं जो किसी दी गई व्यवस्था के अनुकूलन या समायोजन को कम करते हैं'। गैर-प्रकार्यात्मक परिणामों की एक अनुभवजन्य संभावना भी है जो कि विचाराधीन व्यवस्था के लिए अप्रासंगिक हैं। वह प्रकार्य की अवधारणा को आगे व्याख्या करते हैं 'परिणाम जो स्पष्ट और छिपे हैं और जिनके लिए 'व्यक्त प्रकार्य' और 'अव्यक्त प्रकार्य' प्रयोग किया है। यह न केवल एक तार्किक संभावना या यूटोपिया है बल्कि यह अनुभवजन्य स्थितियों में भी सत्य पाया जाता है। मर्टन इस वास्तविकता के बारे में बहुत अच्छी तरह से आश्वस्त थे और कुछ सामाजिक संस्थाओं, मानदंडों और परंपराओं की भूमिका (कार्य/योगदान) का सत्यापन किया। यह प्रारंभिक सूत्रीकरण प्रकार्य की अवधारणा के लिए एक शुरुआती बिंदु के रूप में कार्य करता है जैसा कि पहले के प्रकार्यवादियों द्वारा प्रस्तावित किया गया था। वह अपने समय के परिवर्तनों के प्रति एक पर्यवेक्षक थे जो विशेष रूप से पश्चिमी समाजों और विशेष रूप से अमेरिकी समाज में घटित हो रहे थे।

रेडक्लिफ-ब्राउन और मालिनोव्स्की द्वारा उन्नत कार्य की पहले की धारणा ने माना कि समाज में कोई तनाव या संघर्ष नहीं था (जैसा कि मामला सरल समाजों में हो सकता है) लेकिन उनके (मर्टन के समय) के जटिल समाजों में तनाव या संघर्ष सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण कारक था। तनाव कुछ या दूसरे प्रकार के परिवर्तनों को इंगित करता है, सामाजिक संस्थाओं या सामाजिक विषयों के प्रकार्यों में अकेले परिवर्तन करें। इन विचारों के साथ उन्होंने पहले की अवधारणा की जांच की, जिसे उन्होंने 'प्रकार्यात्मक विश्लेषण (समाजशास्त्र में) की प्रमुख अवधारणा के रूप में नामित किया। प्रकार्य की अवधारणा का निर्माण और उपयोग करते समय रेडक्लिफ-ब्राउन कहते हैं कि 'किसी विशेष उपयोग का प्रकार्य कुल सामाजिक व्यवस्था के कामकाज के रूप में कुल सामाजिक जीवन में योगदान देता है'। मर्टन का तर्क है कि यह दृष्टिकोण बताता है कि सामाजिक व्यवस्था में एक निश्चित प्रकार की एकता है जिसे प्रकार्यात्मक एकता कहा जा सकता है। वह प्रकार्यात्मक एकता को एक ऐसी स्थिति के रूप में मानते हैं जहां सामाजिक व्यवस्था के सभी अंग सद्भाव और आंतरिक स्थिरता (किसी भी लगातार संघर्ष का उत्पादन किए बिना) के साथ मिलकर काम करते हैं। यह दृष्टिकोण सही हो सकता है जब हम छोटे, उच्च एकीकृत आदिवासी जनजातियों को देखते हैं लेकिन जब हम अत्यधिक विभेदित जटिल समाजों को देखते हैं जिनमें बड़े दायरे होते हैं, तो ऐसा नहीं है। इस प्रकार मर्टन ने कई उदाहरणों का पता लगाकर 'एकता की अवधारणा' (रेडक्लिफ-ब्राउन द्वारा दी गई धारणा से संहिताबद्ध) के 'परिमाण की जांच की। पूर्ण समाज की यह एकता पहले से ही अवलोकन के लिए प्रस्तुत नहीं की जा सकती है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए आवश्यक है कि इकाइयों का विनिर्देश होना चाहिए जिसके लिए विषय प्रकार्यात्मक है। दिए गए विषय के कुछ प्रकार्यात्मक परिणाम हो सकते हैं और कुछ अन्य शिथिलता के रूप में, इस प्रकार, हम हमेशा सभी समाजों का पूर्ण एकीकरण नहीं मान सकते हैं।

मर्टन ने मालिनोव्स्की के विचारों से निकाले गए 'सार्वभौमिक प्रकार्यवाद' के दूसरी अवधारणा की जांच की। मालिनोव्स्की का कहना है कि संस्कृति का प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि हर प्रकार की सभ्यता में, प्रत्येक रीति रिवाज, भौतिक वस्तु, विचार या विश्वास किसी महत्वपूर्ण प्रकार्य को पूरा करता है'। मर्टन के अनुसार यह छोटे गैर-साक्षर समाजों के लिए सही हो सकता है। अस्तित्ववादियों और प्रत्येक सांस्कृतिक विषय के प्रकार्य की अवधारणा पर प्रकार्यवादियों का झुकाव बढ़ गया। क्योंकि सामाजिक विषयों के प्रकार्य और शिथिलताएं हैं, जो बनी हुई है वह 'परिणामों का शुद्ध संतुलन (सकारात्मक और नकारात्मक परिणामों का अंतर) है'। इस प्रकार, जटिल समाजों के लिए उनका तर्क है कि दावा 'परिणामों के शुद्ध संतुलन' पर होना चाहिए।

वह फिर से तीसरी अवधारणा प्रस्तुत करते हैं, अर्थात, तीसरी अवधारणा मैलिनोव्स्की के पहले के कथन को कूटबद्ध करता है जो महत्वपूर्ण शब्द के महत्व पर जोर देता है। अभिकथन का पालन करते हुए , वह धर्म (एक सामाजिक संस्था) का उदाहरण लेते हैं जो समाज में अपरिहार्य है। मैलिनोव्स्की के इस दृष्टिकोण के लिए, यानी, 'प्रकार्यात्मक अपरिहार्यता', उनका तर्क है कि 'एकीकरण बनाए रखना' समाज की अपरिहार्य आवश्यकता है, लेकिन संस्था की नहीं, क्योंकि जटिल विभेदित समाजों में अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा भी इसी आवश्यकता को पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार, मर्टन प्रकार्यात्मक अपरिहार्यता की अवधारणा पर प्रकार्यात्मक विकल्प, समरूप या विकल्प की अवधारणा के साथ सामने आते हैं।

इन सभी विचारों, परीक्षणों और सुधारों के लिए, मर्टन ने विंदु/मुद्दों के समुच्चय में कोडित और संक्षेपित किया, जिसे वह 'समाजशास्त्र में प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए प्रतिमान' कहते हैं। उनके प्रतिमान में जटिल समाजों में अनुभवजन्य अनुसंधान में उनके उपयोग की सभी शर्तें, अवधारणाएं, संभावनाएं शामिल हैं। इस प्रतिमान में प्रकार्य की अवधारणाओं से लेकर व्यवस्था तत्वों में परिवर्तन और समझ में परिवर्तन तक ग्यारह बिंदु होते हैं। उनके सिद्धांत विशेष रूप से उनकी क्लासिक पुस्तक 'सोशल थ्योरी एंड सोशल स्ट्रक्चर' में प्रस्तुत किए गए हैं।

2.4 सारांश

प्रकार्यवाद के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का उद्देश्य विभिन्न हिस्सों (विषयों, संस्थाओं, गतिविधियों आदि) के कामकाज से समाज को समझना है जो सामाजिक व्यवस्था (समग्र रूप से समाज) की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की संतुष्टि में योगदान करते हैं। संस्थापक लेखकों ने समाज के अस्तित्व की जरूरतों या आवश्यक शर्तों पर ध्यान केंद्रित किया, जिनके लिए सामाजिक संस्थाएं अनुरूप हैं। अंगों या संस्थाओं को परस्पर और अन्योन्याश्रित माना जाता है। समाज को, प्रकार्यात्मक रूप से परस्पर संबंधित घटक भागों के एक जीव की तरह माना जाता है। ये भाग ऐसे कार्य करते हैं जो समाज के अस्तित्व और निरंतरता के लिए आवश्यक हैं। प्रत्येक तत्व इस रखरखाव के लिए सकारात्मक योगदान देते है। बाद में समाजशास्त्रियों ने माना, विशेष रूप से जटिल-विभेदित समाजों में, कि कुछ संस्थाओं के कुछ नकारात्मक परिणाम कुछ समय के लिए होते हैं। पार्सन्स का मानना है कि इन विचलनों (अव्यक्तता) को रोकने के लिए सामाजिक व्यवस्था अपने आप में शामिल होते है। अंत में मर्टन का विचार है कि संस्थाओं के प्रकार्यों को अन्य विकल्पों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है और इस प्रकार तनाव को दूर किया जाता है, जिनमें से कुछ हमेशा व्यवस्था में हो सकते हैं। यह उनके द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अंदर अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

2.5 संदर्भ

क्रोथर्स, चार्ल्स (1987). रोबर्ट के. मर्टन. चिचेस्टर इंग्लैंड, एलिस हारवुड.

दर्खाइम, एमिल (1997)(1893). द डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी. ट्रांस. डब्ल्यू. डी. हाल्स, इंट्रो.लेविस ए.कोजर. न्यू यॉर्कः फ्री प्रेस

दर्खाइम, एमिल.(1982)(1895). द रूल्स ऑफ सोसिओलोजिकल मेथड. ट्रांस. बाइ डब्ल्यू. डी हाल्स. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस

दर्खाइम, एमिल (1995)(1912). एलीमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रेलिजीयस लाइफ. ट्रांस. ई. फील्ड्स. न्यू यॉर्क एतालः फ्री प्रेस

मैलीनोस्की, ब्रोनिस्लाव).1922. अरगोनट्स ऑफ वेस्टर्न पेसिफिकः एन अकाउंट ऑफ नेटिव इंटरप्राइज एंड अडवेंचर इन द अर्चिपिलेजेस ऑफ मलेनेसियान न्यू गुएना. लंदनः जार्ज रुतलेज एंड संस लि.

मैलीनोस्की, ब्रोनिस्लाव (1969)(1944).ए साइंटिफिक थीयरी ऑफ कल्चर एंड अदर एसेज. लंदनः ऑक्सफोर्डः न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

मर्टन आर. के (1968). सोसल ठियारी सोसल स्ट्रक्चर. न्यू यॉर्क एटालः फ्री प्रेस

पारसंस, टेलकोट(1951). द सोसल सिस्टम. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस

रेड्क्लिफ ब्राउन. ए. आर. 1922. द अंडमान आइलेंडर्स.कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

रेड्क्लिफ ब्राउन. ए. आर.. (1951). स्ट्राचर एंड फंक्शन इन प्रीमिटीव सोसायटीरू एसेज एंड अड्रेसेज. लंदनः कोहेन एंड वेस्ट

स्पेन्सर, हर्बर्ट. 1873. द स्टडी ऑफ सोसिओलोजी. न्यू यॉर्कः डी अप्लेंटन

टर्नर, जोनाथन(1995). द स्ट्रक्चर ऑफ सोसिओलोजिकल थियरी. जयपुरः रावत

इकाई 3 संरचनावाद*

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 क्लाउडो लेवी स्ट्रॉस तथा संरचनावाद

3.3 लेवी स्ट्रॉस के अनुसार संस्कृति की अवधारणा

3.4 मिथकों का संरचनात्मक विश्लेषण

3.5 नृवंश विज्ञान तथा संरचनात्मक विश्लेषण

3.6 समीक्षा

3.7 सारांश

3.8 संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में छात्र पढ़ेंगे :

- संरचनावाद की अवधारणा तथा उसके संस्थापक;
- सत्रीकरण का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य;
- मिथक व सामाजिक संस्थानों के विश्लेषण में संरचनावाद की उपयोगिता;
- संरचनात्मक दृष्टिकोण का व्यापक उपयोग; तथा
- संरचनात्मक दृष्टिकोण की समीक्षाएँ।

3.1 प्रस्तावना

संरचनावाद में सामाजिक संरचना ध्वनित होती है। दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बंध है, परन्तु सैद्धांतिक दृष्टि से संरचनावाद संरचना तथा क्रियात्मक सिद्धांत से मेल नहीं खाता क्योंकि संरचनावाद की पद्धति तथा दार्शनिक मान्यताएं इन दोनों से भिन्न हैं तथा इनके बुनियादी परिसर भी संरचनावाद से मेल नहीं खाते।

सामाजिक संरचना की धारणा मूलतः समाज में रहने वाले व्यक्तियों के आपसी सम्बंधों का निरीक्षण एवं विश्लेषण करती है। जबकि संरचनावाद संस्कृति द्वारा धारणाओं को दिये जाने वाले नामों व विचारों के सम्बंधों का विश्लेषण करता है। संरचनावाद की भूमिकाएं काल्पनिक मामलों में सामाजिक संरचना की भूमिकाओं की तुलना में उच्च स्तर की होती है। दूसरे शब्दों में समाजशास्त्री दर्खाइम तथा उनके अनुयायी ए आर रेडक्लिफ-ब्राऊन ने सामाजिक सम्बंधों से जुड़े व्यवहारों तथा पद्धतियों की व्याख्याएं की हैं, जबकि संरचनावाद ने मानव-मस्तिष्क के सभी समस्त ढांचों का अध्ययन किया है क्योंकि मस्तिष्क सभी मनुष्यों में आवश्यक रूप से मौजूद रहता है, अतः ढांचागत अथवा संरचनात्मक विश्लेषण आदर्श रूप से संदर्भ रहित होते हैं। संरचनात्मक-क्रियात्मक विश्लेषणों से यह एक दम भिन्न होते हैं। संरचनात्मक क्रियात्मक विश्लेषण विशेष रूप से उस समाज व संस्कृति के संदर्भ में होते हैं जिसके आंकड़ों का विश्लेषण किया जाता है।

*यह इकाई प्रो. सुभद्रा चन्ना के द्वारा लिखी गई है।

लेवी स्ट्रॉस के अनुसार किसी भी मिथक का संरचनात्मक विश्लेषण पूरी तरह उस संस्कृति के संदर्भ से मुक्त होता है। जिसमें यह (मिथक) अवस्थित होता है। इस प्रकार जहां संरचनात्मक प्रक्रियावाद सम्पूर्णतावादी निधियों तथा पूरी संस्कृति के समग्र विश्लेषण में विश्वास रखता है, वही संरचनावाद संस्कृति के अलग-थलग पड़े कुछ अंशों का विश्लेषण करता है तथा उसकी पहुँच अधिक सामान्य व सापेक्ष (तुलनात्मक) होती है।

ज्यों-ज्यों हम इसकी व्याख्या आगे बढ़ाते है त्यों-त्यों आपको सामाजिक संरचना तथा संरचनावाद में और भी अनेक प्रकार के अंतर तथा विरोधाभास दिखाई पड़ेंगे।

3.2 क्लाउडो लैवी-स्ट्रॉस तथा संरचनावाद

संचनावाद की अवधारणा तथा उसकी पद्धति को स्थापित करने का श्रेय फ्रांसीसी दार्शनिक तथा मानव-विज्ञानी क्लाइड लैवी-स्ट्रॉस की है। वे समाज को अन्य अनके समाजविज्ञानियों की तरह सम्बंधों का जाल मात्र नहीं मानते परन्तु मनुष्यों के बीच आदान-प्रदान की आवश्यकता पर आधारित मानते हैं। विवाह के लिए स्त्रियों का आदान-प्रदान समाज की आधारभूत व्यवस्था है। संरचनावाद मनुष्यों के मस्तिष्क की संरचना तथा उसका सामाजिक संरचना व गतिविधियों में इस्तेमाल की केंद्र में रखकर काम करता हैं संरचनावा यह बताता है कि किस प्रकार मनुष्य संसार में जीवन को सार्थक बनाने के लिए द्विधारी पद्धति का इस्तेमाल करता है।

लैवी-स्ट्रॉस जब संरचना की बात करता है, तब वह मात्र प्रकट संरचनाओं की बात नहीं करता है जो सतह पर दिखाई देती है, जिस तरह ए आर रेडक्लिफ ब्राऊन सम्बंधों के युग्म की बात करता है। परन्तु वह मानक के अंदर मौजूद उन गहरे व अचेतन तार्किक संरचनाओं की बात करता है जो प्रकट संरचनाओं के नीचे अविस्थत होते हैं। ये संरचनाएं वैचारिक होती हैं तथा अदृश्य होती हैं आम तौर पर लोग इन्हें समझ तक नहीं पाते। केवल विश्लेषक ही इन्हें समझते हैं और इनकी व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार संरचनावाद एक सकारात्मक पहल है। यह समाज को तर्क आधारित संरचना मानता है, संरचनावाद मनोविज्ञान तथा भाषा विज्ञान दोनों को महत्व देता है। मनोविज्ञान के संदर्भ में संरचनावाद पार-सांस्कृतिक मनोविज्ञान की बात नहीं करता जैसे सामान्यतः अनेक समाजशास्त्री करते हैं। वह अचेतन से जुड़ी ठोस प्रत्यक्षतावादी मनोविज्ञान की बात करता है। जो वैश्विक मस्तिष्क से सीधा जुड़ा होता है। इसी तरह भाषा विज्ञान के संदर्भ में यह केवल कथन की बात नहीं करता, वह भाषा की औपचारिक विशेषताओं की बात करता है। भाषा के व्याकरण सम्मत् स्वरूप की बात करता है। यहां लैवी स्ट्रास फरदीनंद डी सॉसर (Ferdinand de saussure) के भाषाई संरचनावाद से सीधा सीधा प्रभावित लगता है। फरदीनंद ने संरचनावाद शब्द का प्रयोग 1920-1930 के अंतिम काल के दौरान प्रकाशित अपनी पुस्तकों में प्रयोग करना आरंभ किया था। फरदीनंद सॉसर का मानना है कि वक्ता के व्यक्तिगत रूप से संज्ञान में आये अदृश्य नियमों के अनुसार भाषा निर्मित होती है, परन्तु वक्ता स्वयं उसकी व्याख्या करने में प्रायः असमर्थ रहते हैं।

इस प्रकार सभी स्थानिक वक्ता की भाषा को पूरे अधिकार के साथ बोलती हैं, वे यह भी जानते है कि उस भाषा को बोलने का सही तरीका क्या है वे व्याकरण पर पूर्ण अधिकार रखे बिना भी वक्ता की गलती पकड़ सकते हैं, और उसमें संशोधन कर सकते हैं यह सब वे तब कर पाते हैं जबकि वे भाषा की संरचनाओं के बारे में कुछ भी नहीं जानते। यह काम भाषा विशेषज्ञों व विश्लेषकों का है। इस प्रकार भाषा बोलने वाला भाषा के बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त किये बिना अनजाने में ही उसे सही रूप में बोलने में सफल रहता है। यही बात

संस्कृति के बारे में लागू होती है। जो लोग सांस्कृतिक मूल्यों परम्पराओं का पालन करते हैं, वे वह सब बड़ी सरलता से करते रहते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि ऐसा करने के पीछे कारण क्या होते हैं। क्योंकि सांस्कृतिक व्यवहार के पीछे जो व्याकरण होते हैं वे अंदर छिपे रहते हैं। मानव-विज्ञान विशेषज्ञ मनुष्यों के अंदर गहराई में छिपे उन कारणों, नियमों तथा प्रवृत्तियों का अध्ययन व विश्लेषण करते हैं जो मनुष्यों के सांस्कृतिक व्यवहारों के लिए जिम्मेदार होते है।

लैवी स्ट्रॉस ने फ्रांसीसी समाजशास्त्र के विद्वान अपने पूर्ववर्ती समाजशास्त्रियों एमिली दर्खाइम तथा मार्शल मॉस से भी प्रेरित था। रूसी संरचनावादी भाषा विज्ञानी रोमन जेकब्सन, ने न्यूयार्क के 'न्यू स्कूल' में लैवी स्ट्रॉस के साथ काम किया था। इस स्कूल में लैवी स्ट्रॉस ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शिक्षण कार्य किया था। जेकब्सन प्राग-स्कूल (Prgue school) से जुड़ा था तथा लैवी स्ट्रॉस ने अपनी द्विधारी पद्धति की अवधारणा स्वयं अपने काम से विकसित की थी। द्विधारी पद्धति के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क किसी चीज को विरोध या तुलना के आधार पर समझता है। जैसे अंधकार के ठीक विपरीत अवस्था प्रकाश कहलाती है जैसे जीवन मृत्यु की' तीव्रता, धीमेपन की विपरीत अवस्था होती है। दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका विपरीत मौजूद न हो। कोई ऐसी अवस्था नहीं है जिसकी विपरीत अवस्था नहीं। लैवी स्ट्रॉस ने हीगल के द्वंद्वात्मक सिद्धांत ग्रहण किया जो उनके मिथक व कहानियों के विश्लेषणात्मक में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मिथक जैसे सांस्कृतिक तत्व को समझने के लिए इसे इसके घटकों में तोड़ना होगा और फिर इन घटकों को उलटे द्विधारी पद्धति से उलटे क्रम में लगाकर पढ़ना होगा। अगले में हम मिथक के विश्लेषण के बारे में पढ़ेंगे। यहाँ सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि लैवी स्ट्रॉस ने दावे के साथ कहा है कि किसी भी संस्कृति का समग्र अध्ययन किये बिना भी उसका अथवा उसे किसी घटक का विश्लेषण किया जा सकता है। लैवी स्ट्रॉस का यह अभिकथन सबसे ज्यादा चर्चित तथा समग्रता वाले संरचनात्मक अभिक्रियावादियों के सिद्धांतों के ठीक विपरीत है। उसके अनुसार संस्कृति के किसी भी घटक का कार्य समूची संस्कृति के चरित्र का प्रतिनिधित्व करना अथवा सामाजिक अखंडता में योगदान देना मात्र होता अपितु मानव समाज को एक संदेश देना होता है। यह संदेश उस संस्कृति विशेष का अंग भाग नहीं होता है अपितु यह अस्तित्व मानव जातिक के संदर्भ में होता है। इन संदेशों का सृजन मानव-मस्तिष्क को अपने चारों और फैले मानव-समाज को, पूरे विश्व को समझने के लिए किया जाता है जिसका मनुष्य के लिये केवल एक मार्ग है वो विरोध उत्पन्न करके ही संभव है, जो विरोधी के आधार तैयार कर रहे है।

इस प्रकार संरचनावाद सामान्यी कारण का प्रयास करता है। संरचनावाद का उपयोग अलग-थलग पड़ी संस्कृतियों द्वारा किया गया है। इसे तुलनात्मक शैली में इस्तेमाल किया जाता रहा है। इस प्रकार तुलना करने की वैज्ञानिक प्रविधि जिससे किसी वस्तु या संदर्भ को सही सही समझा जा सकता है। लैवी स्ट्रॉस के संरचनावाद के केंद्र में अवस्थित है।

बोध प्रश्न

1) लैवी स्ट्रॉस के संरचनावाद की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) लैवी स्ट्रॉस के संरचनावाद पर पड़े प्रमुख प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) संरचनावादी अभिक्रियात्मक सिद्धांत से लैवी स्ट्रॉस का संरचनावाद किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

3.3 लैवी स्ट्रॉस की सांस्कृतिक अवधारणा

लैवी स्ट्रॉस के अनुसार संस्कृति सम्पर्क का माध्यम है, उस उद्देश्य को अभिव्यक्ति है जो आदान-प्रदान के जरिए पूरे समाज को बांध कर रखती हैं। सभी मिथक, लोक-कथाएँ, लोक गीत, तथा रीति-रिवाज व मान्यताएँ जो मिलकर संस्कृति का निर्माण करते हैं, वे इसी उद्देश्य की अभिव्यक्ति के वाहक होते हैं। (बरीज, 1963 : 98)

अपने संरचनावाद में लैवी स्ट्रॉस ने सम्बंधों को संरचना तथा मनोविज्ञान, मानव मस्तिष्क की संरचना का सटीक प्रत्युत्तर दिया है। उसके अनुसार मानव मस्तिष्क संस्कृति के उन तत्वों में प्रतिबिम्बित तथा प्रयुक्त होता है जो आदान-प्रदान के माध्यम से समाज को थामे रहते हैं। 1963 के आस-पास लैवी स्ट्रॉस ने संस्कृति के मूल बिन्दु की, विशेषरूप से प्रकृति दवारा संस्कृति तक पहुँचाये जाने वाले आशय की तलाश की और पाया था कि मानव समाज में विवाह करने की सांस्कृतिक प्रवृति के पीछे स्त्री और पुरुष का शारीरिक मिलन होता है जिसमें प्रकृति का अपनी नस्ल को आगे बढ़ाने का उद्देश्य छिपा होता हैं

लैवी स्ट्रॉस के अनुसार विवाह मनुष्यों के बीच आदान-प्रदान की आधारभूत परम्परा विवाह है। विवाह के उद्देश्य से समाज में स्त्रियों के आदान-प्रदान अथवा अदला-बदली की प्रथा समाज के विभिन्न समूहों के बीच सम्बंधों की मजबूती को बनाये रखती है। परन्तु ये विभिन्न मानव समूह आखिर कैसे निर्मित होते है? सरलतम समाजों में मनुष्यों की अपने घर की बेटियों के लिए दूसरे लोगों के बीच दूल्हा तलाश करने की प्रवृति काम करती है। इस प्रकार सभा बेटियाँ देने वाले और बेटियाँ स्वीकार करने वाले विविध सामाजिक समूह आकार ग्रहण कर लेते हैं और उनके बीच सम्बंध प्रगाढ़ होते चले जाते हैं। समान गोत्र में विवाह करने से बचने के पीछे जो मनोवैज्ञानिक व प्राकृतिक तर्क दिये जाते हैं, लैवी स्ट्रॉस का मानना है कि ऐसी मान्यताओं के पीछे एक ऐसी सांस्कृतिक रणनीति न्याय करती है जो समाज को बनाये रखने के लिए जरूरत है। सांस्कृतिक घटक भी सामाजिक संरचना का निर्माण करने तथा उसे बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

लैवी स्ट्रॉस का कहना है कि सबसे ज्यादा अलग-थलग पड़ी संस्कृति के विचार तथा मान्यताओं की द्विधारी पद्धति के विपरीतता के सिद्धांत के आधार पर व्याख्या की जा सकती है। अपने सुप्रसिद्ध निबंध, 'द बीयर एण्ड द बारबर (1936) में लैवी स्ट्रॉस ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि ऑस्ट्रेलिया की जनजाति 'अबोर्गिन्स' के लोग सीध सादे एक से

स्वभाव वाले जो अब भी शिकार करने और पेट भरने के लिए भोजन सामग्री एकत्रित करने में विश्वास रखते हैं उन्हें टोटमवाद (Totemism) तोले वाद कैसे समझाया जा सकता है? एक संयुक्त समाज में मौजूद जातिप्रथा खेले की विविध बिधियां तथा भारत के नगरों में रहने वाले की नागरिकों की अर्थव्यवस्थता के बारे में कैसे समझाया जा सकता है। लेकिन यदि द्विधारी पद्धति की दोहरी प्रणालियों में से किसी एक के बारे में बताया जाये तो वह उन्हें अपनी अपनी भौतिक संरचना से भिन्न नहीं लगेंगे।

दोनों ही मामलों में, किसी समाज की आधारभूत आवश्यकताएं मनुष्यों के समूहों का निर्माण कर देती हैं जो आपस में अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आदान-प्रदान करता, एक दूसरे का सहयोग करना आरम्भ कर देते है। मनुष्यों को तब तक आदान-प्रदान की जरूरत नहीं पड़ती जब तक कि वे किसी संस्कृति विशेष के प्रभाव में आ जाने से अपनी अलग पहचान नहीं बना लेते। टोटेमवाद एक विश्वास है जो मानव समूहों को प्राकृतिक गुणा प्रदान करता है जिसके कारण वे आपस में मिलकर रहते हैं। इसी तरह की प्रवृति पक्षियों, जानवरों, जल, वायु तथा बादलों की गर्जन में पाई जाती है।

यद्यपि दुर्खीइम तथा ए आर रैडक्लिफ ब्राऊन ने टोटेमवाद की क्रियात्मक रूप में व्याख्या की है। इन विद्वानों ने इसे सामूहिक चेतना (Collective consciousness) का नाम दिया है। लैवी स्ट्रॉस की व्याख्या इससे बिल्कुल अलग है। लैवी स्ट्रॉस के आधारभूत सिद्धांत के अनुसार संस्कृति संपर्क का तरीका है। अपनी मूलभूत सैद्धान्तिक दायरे में लैवी स्ट्रॉस ने टोटेमवाद के बारे में कहा है कि ''टोटेम एक सुन्दर सोच है।'' जबकि इससे बिल्कुल अलग तरह की व्याख्या करते हुये रैडक्लिफ ब्राऊन ने कहा है - ''टोटेम को आत्मसात करना अच्छा है''। रैडक्लिफ के अनुसार टोटेम उन प्राकृतिक तत्वों के प्रतीक है जिनके सामाजिक मूल्य होते हैं। परन्तु लैवी स्ट्रॉस के अनुसार टोटेम ऐसे वर्ग आधारित लक्षण है जिनके आधार पर विभिन्न सामाजिक समूहों को अलग-अलग पहचाना जा सकता है।

ऑस्ट्रेलिया के अबोरिजिन समाज में सम्बंध गोत्र समाज की ऐसी आधार भूत विशेषताएं हैं जो विभिन्न सामाजिक समूहों को एक दूसरे से पृथक भी करती हैं और गोत्र के बाहर विवाह करने की सांस्कृतिक परम्परा द्वारा विभिन्न सामाजिक समूहों को एक दूसरे से बांधे भी रहती हैं। ऐसा माना जाता है कि एक गोत्र के सभी लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही पूर्वज से जन्में हैं। इसी कारण उनके बीच रक्त सम्बंध है, अतः वे आपस में विवाह नहीं कर सकते। आस्ट्रेलिया के अबोजिन समाज में सब एक जैसे हैं। आयु तथा लिंग के आधार पर उन्हें अलग-अलग करके देखा जा सकता है। इनमें विभिन्न गोत्रों या वंशों के समूह एक साथ रहते हैं। वे सब अपने आपको एक ही पूर्वज की संतान मानते हैं। इसलिए उनके गुण व स्वभाव एक जैसे हैं।

इस प्रकार प्रकृति गत विभिन्नताएं विभिन्न मानव समूहों को अलग-अलग पहचान देती है। मनुष्यों की प्रकृतियों के अन्तर मनुष्यों को खास पहचान प्रदान करते हैं। इनके आधार पर उन्हें अलग-अलग पहचाना जा सकता हैं अलग-अलग प्रकृतियों वाले मानव समूहों को उनके तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर अलग-अलग करके देखा जाता हैं। उड़ने वाले जीवधारी जमीन पर रहने वाले जीवधारियों से अलग होते हैं। मांसाहारी शाकाहारियों से अलग होते हैं। जलीय जीव अग्निजीवों से अलग तरह के होते हैं।

इस प्रकार सांस्कृतिक पृथकता मनुष्यों की प्रकृतिगत विभिन्नताओं से जन्म लेती है। स्त्रियों में कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं जिनके कारण वे पुरुषों से बहुत अलग होती है और अपनी इन्हीं विशेषताओं से वे ऐसी क्षमता प्राप्त करती है कि जहाँ जन्म लेती और पलती बढ़ती है वहां से विवाह के लिए उन्हें अलग हटना पड़ता है और दूसरे गोत्र के समाज में जाना

पड़ता है। वे इस प्रकार के दो विभिन्न समाजों या सामाजिक समूहों या समुदायों के बीच सम्बंध सूत्र बन जाती है जो इन्हें सामाजिक बंधन में बांधे रखते हैं।

जिन समाजों में विभिन्न जातियों के लोग एक साथ रहते हैं उनमें मानव-समूहों के बीच सम्बंधों में जटिलताएं आ जाती हैं। ये सांस्कृतिक विभाजन से उजागर होती हैं, जैसे मजदूरी करने वाले लोगों के अलग समूह बन जाते हैं और दूसरी ओर उन लोगों के समूहो बन जाते हैं जो मजदूरी करवाने के लिए इन पर आश्रित हो जाते हैं। स्त्रियों की बीच प्राकृतिक समानता सांस्कृतिक विविधताओं के कारण व्यर्थ हो जाती है। जातीय पहचाने उन्हें भी अपने दायरों में खींच लेते है। इस प्रकार जातीय समूह अपना अलग स्थान बना लेते हैं और ऐसी स्थिति में स्त्रियों की पहचान उनकी प्रकृति से नहीं जा जाती अब वे सांस्कृतिक विविधताओं के आधार पर पहचानी जाती है। हर जाति की संस्कृति अलग-अलग होती है। कार्य के आधार पर बनने वाले मानव समूहों में रहने वाली स्त्रियों की पहचान कामों के आधार पर सुनिश्चित होने लगती है और सामाजिक सम्बंधों को सुदृढ़ बनाने का दायित्व सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों पर आ जाता है।

इस प्रकार लैवी स्ट्रॉस के अनुसार टोटेमवाद तथा जातिवाद दोनों का एक सा उद्देश्य होता है - मानव समूहों के बीच अंतरों व विरोधी को चिन्हित करना। ऐसी स्थिति में स्त्रियों का आदान-प्रदान गोत्रों के आधार पर होता रहता है और सेवाओं का जातीय अथवा कार्य-समूहों के आधार पर दोनों मामलों में सांस्कृतिक पहचाने अंतर पैदा करती हैं और वे अलग-अलग या विरोधी लगने लगते है, जबकि प्राकृतिक रूप से वे एक जैसे ही होते है। अंतः संस्कृति को अलगाव कारी माना जाता है। संस्कृति मस्तिष्क को संदेश भेजते है, जीवन-शैली या व्यवहार पद्धति नहीं। इस प्रकार संस्कृति को इस तरह से समझने का महत्व यह है कि इस तरह से संस्कृति के मिथकीय संदर्भ को एक तरफ हटा देता है और संस्कृति की संरचना पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित कर उसकी व्याख्या करता है और निष्कर्ष यह निकलता है कि सभी संस्कृतियों की संरचना एक जैसी ही है।

3.4 मिथकों का संरचनावाद विश्लेषण

लैवी स्ट्रॉस (1963) के अनुसार मिथकों की अपनी महत्व पूरी भूमि का होती है। वास्तविक जीवन में जो अंत विरोध होते हैं, मिथक उन्हें ढकने का काम करते हैं। यदि किसी मिथक को हमें सही अर्थों में समझना होता है तो हमें उसके समस्त घटकों को अलग-अलग करके देखना होगा। द्विधारी पद्धति की विपरीतता की अवधारण के सहयोग से इन घटकों को समझा जा सकता है। मिथक की संरचना को तोड़ने के बाद उसके घटकों को एक निश्चित क्रम में लगाया जाता है और फिर उनका विश्लेषण किया जाता है। मिथक की संरचना उसे एक स्वरूप प्रदान करती है तथा उसकी विस्तृत व्याख्या व विश्लेषण से प्राप्त तथा उसके संदर्भ को दर्शाते हैं।

उसी प्रकार व्यवहार का एक वह स्वरूप होता है जो दिखता है और दूसरा वह होता है जो वास्तविक है। उदाहरण के लिये 'त्याग' एक प्रकार का व्यवहार है और यदि मालूम करना हो कि त्याग किस संदर्भ में किया गया है तो उसका मानव विज्ञान के आधार पर विश्लेषण करना पड़ेगा, अनेक प्रश्नवाचक शब्द जैसे कौन, कहां, क्यों, कैसे लगाने पड़ेंगे तब कहीं जाकर इस व्यवहार के पीछे की सच्चाई सामने आयेगी। लेकिन जब किसी मिथक का विश्लेषण किया जाता है तो वह केवल उसकी संरचना से संबंध रखता है, न कि संदर्भ से। इस प्रकार यदि हम किसी मिथक का विश्लेषण करें तो त्याग उसका एक तत्व मात्र होगा। इसका मिथकीय रीति-रिवाज से कुछ लेना-देना नहीं। यदि मिथकों को उनके आधारभूत तत्वों में तोड़ कर देखा जाये तो ज्यादातर मिथक एक जैसे ही होंगे। इस प्रकार किसी

मिथक अथवा कथा का आधार उसकी संरचना होती है जिसमें अनेक प्रकार की जटिलतायें और रहस्य छिपे हो सकते हैं और मिथक का अन्तिम घटक वह अग्रगामी संदेश होता है जिसे संपर्क में आने वाले लोगों द्वारा समझा जाता है और आगे बढ़ा दिया जाता है। जब किसी कहानी को उसमें निहित उद्देश्य अथवा संदेश के आधार पर उसे और आगे ले जाये जाने की संभावना समाप्त हो जाती है तो वहीं पर उस कहानी का अंत हो जाता है। यह तथ्य बहुत कुछ 'हीगल' की सोच के निकट है। काल मार्क्स की सोच के निकट नहीं हैं। 'हीगल' के अनुसार ही एक सिद्धान्त में से उसकी तोड़ करने वाला प्रति सिद्धान्त निकलता है और वो उसे तीसरी अवस्था की ओर ले जाता है जिसे 'समन्वय' कहते हैं।

'लैवी स्ट्रॉस' ने अनेकों मिथकों का विश्लेषण किया उसमें से एज़्डीवाल (Asdiwal) नामक मिथक का विश्लेषण बहुत चर्चित हुआ है। इसके अनुसार किसी मिथक को विपरीत श्रेणियों में तोड़ा जाता है और इसके बाद उनकी दूसरे मिथकों से तुलना की जाती है। 'लैवी स्ट्रॉस' यह मानकर चलता है कि मनुष्य का मस्तिष्क सीमित संरचना पद्धतियों को ही पहचानता है क्योंकि मस्तिष्क की अनुभव करने की क्षमता सीमित होती है। इस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क के समझने के दो आधार होते हैं। एक आधार होता है अनुरूपता, और दूसरा होता है प्रतिरूपता। अतः यदि हम किसी चीज को समझना चाहें तो उसे तुलनात्मक कसौटी पर कसते हैं और फिर उसे चातो समानता के आधार पर समझते हैं या विरोध के आधार पर। इस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क में समझने की क्षमता कुछ आधारों पर निर्भर करती है और ये आधार किसी नियम विशेष के आधार पर अपने संदेश छोड़ते हैं। इसी आधार पर ''लैवी स्ट्रॉस' ने अनेक मिथकों का विश्लेषण किया है जिससे यह पता लगता है कि एक मिथक अन्य मिथकों से संरचना के आधार पर मिलता जुलता होता है और वह एक निश्चित प्रक्रिया के द्वारा अपना संदेश प्रेषित करता है।

'लैवी स्ट्रॉस' ने इस प्रक्रिया को परिवर्तन के नियमों के अंतर्गत घटित होने वाली माना है। 'कैरोल' (1977) ने 'लैवी स्ट्रॉस' के परिवर्तनों के नियमों की जटिलता को सरल करते हुए दो प्रकार के नियमों का उल्लेख किया है।

परिवर्तन का पहला नियम : परिवर्तन दो व्यक्तियों की भूमिकाओं के बीच होता है जिन्हें X और Y कह सकते हैं यह दोनों एक दूसरे से एक खास संदर्भ में जुड़े होते हैं।

1) अ) : हर भूमिका के परिणाम को अस्वीकार करना

1) ब) : मूलरूप से एक व्यक्ति को किसी एक भूमिका में भेजना X की भूमिका में Y हो और Y की भूमिका में X हो

परिवर्तन का दूसरा नियम : विभिन्न घटनाओं के परिणाम पर नजर डाल और हर चलता के परिणाम को अमान्यकर दें तथा घटनाओं को उल्टे क्रम में लगाकर देखें।

कैरोल सहित अन्य अनेक विद्वानों ने बाइबिल में दिये गये सृष्टि क्रम के वर्णन का हवाला दिया है।

बाइविल के मिथक का विश्लेषण (mytus from chistian Bible) अपनी पुस्तकों 'गार्डन ऑफ ईडन' (1961) में लेवी-स्ट्रास ने तथा 'जैनेसिज एटरूमिथ माइथ' (1962) में एडमंड लीच ने दिया है।

लीच ने इस मिथक का विश्लेषण करते समय औपोजीशन (opposition) तथा मीडिएशन (mediation) शब्दों का इस्तेमाल उसी अर्थ में किया है जिस अर्थ में लैवी स्ट्रॉस (1963) ने किया है। विपरीतता शब्द का प्रयोग यह दिखाने के लिए किया गया है मनुष्य के

मस्तिष्क में धारणा को दो विपरीत श्रेणियाँ मौजूद रहती हैं। इन दोनों श्रेणियों के बीच अवधारणात्मक अंतर स्पष्ट दिखता है। समन्वयात्मक श्रेणी वह है जो इन दोनों विपरीत श्रेणियों के बीच जो एक जैसा अंतनिहित है, उसका प्रतिनिधित्व करती है। यह जो समन्वयात्मक श्रेणी है, यह दोनों विपरीत श्रेणियों में मौजूद विपरीतता को मानव-मस्तिष्क में मनोवैज्ञानिक रूप से मौजूद दोनों विपरीत श्रेणियों को एक दूसरे से जोड़ते हुए निरस्त कर देती है।

आइये इज ऑफ जैनेसिज के संदर्भ में समझते हैं। ईसाइयों के विश्वास के अनुसार बाइबिल में वर्णन है कि ईश्वर ने पूरी सृष्टि की रचना छः दिन तक लगातार की और उसके बाद सातवें दिन विश्राम किया। इसी आधार पर ईसाई रविवार को अवकाश का दिन मानते हैं, और उस दिन कोई काम नहीं करते। बाइबिल में इसे सब्बात (sabbath) का दिन कहा गया है। इसके बाद के छः दिनों (जिसे एक सप्ताह माना जाता है) ईश्वर ने सृष्टि को साधे रखने के लिए प्रतिदिन कुछ कामों को अंजाम दिया और उन्हें दायित्व सौंपे।

पहला दिनः धरती में से उसके विपरीत स्वर्ग की रचना की, प्रकाश में से अंधकार की रचना की, रात में से दिन की रचना की तथा प्रातःकाल में से संध्या-काल की रचना की।

इस प्रकार लीच के अनुसार पहले दिन ईश्वर ने जिन विपरीत चीजों की रचना की वे आज तक उसके तरह विपरीत ही बनी हुई हैं। मनुष्य के मस्तिष्क में चीजों की यह विपरीत सदा-सदा के लिए अपना स्थान बना चुकी है।

चौथे दिन ईश्वर ने चंद्रमा तथा सूर्य की रचना की जो एक सुनिश्चित क्रम में गति करते रहते हैं। सूर्य की गति के कारण अंधेरा और प्रकाश बारी-बारी से धरती पर उतरते रहते हैं। वे एक-दूसरे के सदा विपरीत ही रहने वाले हैं। एडमंड लीच के अनुसार स्थायी रूप से रहने वाली विपरीतता जो पहले दिन रची गई, चौथे दिन वह गव्यात्मक विपरीतता में परिवर्तित हो गई। प्रकाश और अंधकार के बीच जैसी विपरीतता तैयार की गई थी, वैसी ही विपरीतता जीवन और मृत्यु के बीच पैदा कर दी गई। ऐसी ही विपरीतता 'ईव' तथा 'एडम' में तथा उत्पादकता तथा अनुत्पादकता में देखने को मिलती है। ईश्वर ने वर्षा के रूप में नभ-मंडल के ऊपर पानी की रचना की तथा नभमंडल के नीचे समुद्र की रचना की। नभमंडल के ऊपर वर्षों के रूप में जिस जल की रचना की गई थी, वह उत्पादकता से सीधा जुड़ा है क्योंकि वर्षों के जल से धरती पर फसलें उगाई जाती हैं, जबकि धरती पर मौजूद सागर का पानी उपजाऊ नहीं होता। इस प्रकार समुद्र अंधकार व मृत्यु की श्रेणी में आते हैं।

ग्रीक मिथक के अनुसार वह स्थान जहां मरने के बाद मृतक जाते हैं समुद्र के नीचे अवस्थित है उसे हैडस (Hades) कहा जाता है। एडमंड लीच नभमंडल को प्रकाश तथा अंधकार के बीच तथा जीवन और मृत्यु के बीच भी उसी तरह मध्यस्थ मानता है जैसे ऊपर के पानी (उत्पादन का प्रतीक) और नीचे के पानी (अनुत्पादन का प्रतीक) के बीच उसे मध्यस्थ माना जाता है।

इसी प्रकार लीच कहता है कि जीवित चीजों की रचना करते समय ईश्वर ने दो तरह के पशु बनाये - पालतू पशु तथा जंगली पशु और साथ ही रेंगने वाले जानवर पालतू जानवरों तथा जंगली जानवरों के बीच मध्यस्थता अथवा समन्वय करने की दृष्टि से बनाये गये थे।

एडमंड लीच ने जो समय का विश्लेषण किया है वह सबसे ज्यादा रूचिकर है। समय का संरचनात्मक विश्लेषण करते हुये लीच न तो उसे किसी दिशा विशेष में जाने वाला (और जाकर वापस न आ पाने वाला) मानता है, न ही गोल-गोल घूमने वाला। उसके अनुसार

समय को एक अंतराल के रूप में समझा जा सकता है, जो एक क्षण तथा दूसरे क्षण के बीच होता है। इस प्रकार पानी की बहती धारा सतत नहीं बह सकते हैं, अपितु वह एक बूंद के बाद दूसरी बूंद के रूप में गतिमान है और इन दोनों बूंदों के बीच का जो अंतराल है, वह समय के रूप में चिहिन्त किया जा सकता है।

ग्रीक में समय के देवता को क्रोनस (Cronous) कहा जाता है। क्रोनस के मिथक का विश्लेषण करते समय लीच ने इसी विश्लेषण पद्धति का इस्तेमाल किया है। रीति-रिवाजों के संरचनात्मक विश्लेषण में, जीवन क्रम रीति-रिवाजों के वार्षिक अनुक्रम दोनों में लोग समय की गति को महसूस कर सकते हैं। मनुष्यों तथा अन्य जीवधारियों में आने वाले परिवर्तन से, वर्ष में आने वाले त्यौहारों के बीतने से हम यह अनुभव कर सकते हैं कि समय गतिमान है। इस प्रकार प्रत्येक रीति-रिवाज समाज का प्रतीकात्मक विपरीत हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह सर्कस में विपरीत भूमिकाएं तथा कुछ त्यौहारों जैसे हिन्दुओं के होली के त्यौहार में सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप का बदलते जाना। लीच के अनुसार रीति-रिवाजों के बीच अंतराल आते हैं, जैसे तब और अब के बीच, अतीत तथा वर्तमान के बीच अंतराल को या तो रूकावट से चिहिन्हत किया जा सकता है या विपरीतता से।

उत्सव के समय लोग अपने रोजाना के काम को रोक देते हैं और फिर वे ऐसा कुछ करते हैं जो प्रायः रोजमर्रा के जीवन में नहीं करते। ये अंतराल मनुष्यों को समय को बोध कराते हैं और उन्हें रूककर सोचने पर विवश करते हैं।

इस प्रकार लैवी स्ट्रॉस ने सामाजिक विश्लेषण के संदर्भ में संरचनात्मक विश्लेषण का महत्व अपने अनुयायियों को समझाया था, जिन्होंने बड़े पैमाने पर संरचनात्मक विश्लेषण की विधि का विकास किया। एंडमंड लीच ने संरचनात्मक विश्लेषण की पद्धति को विशेष रूप से व्याख्यायित किया। उनके अलावा कुछ अन्य विद्वानों ने भी इसमें योगदान दिया। 1970 व 80 का दशक आते-आते संरचनात्मक विश्लेषण की पद्धति बहुत लोकप्रिय हो गई थी परंतु इसके अगले दशकों में मानव जाति विज्ञान पर सामने आई। नई-नई खोजों की चमक के बीच यह पद्धति धूमिल पड़ने लगी। व्यक्ति निष्ठ विधि तथा प्रतिबिम्बात्मक विधि ने लैवी स्ट्रॉस के संरचनात्मक विश्लेषण को पीछे छोड़ दिया।

बोध प्रश्न

1) 'लैवी स्ट्रॉस' का मिथकों के बारे में संरचनात्मक विश्लेषण क्या हैं? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

2) रूपांतरंण के वे नियम क्या हैं जो एक मिथक को दूसरे मिथक से जोड़ने के लिये प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

.....

.....

.....

.....

3) 'डायमंड लीच' का संरचनात्मक विश्लेषण का सिद्धांत उत्पत्ति मिथकों पर किस प्रकार लागू होता है उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

4) 'डायमंड लीच' का संरचनात्मक विश्लेषण का सिद्धांत समय की व्याख्या करने में किस प्रकार लागू होता है।

.....

.....

.....

.....

5) रीति-रिवाजों के संरचनात्मक विश्लेषण में अंतराल की अवधारणा क्या है?

.....

.....

.....

.....

3.5 मानवजाति विज्ञान तथा संरचनात्मक विश्लेषण

संरचनात्मक विश्लेषण का एक पक्ष अपेक्षाकृत कुछ कम स्पष्ट हुआ है और वो यह है कि मानवविज्ञान का विश्लेषण में क्या योगदान रहा। 'लैवी स्ट्रॉर्स' ने अधिकतर इस पर अधिक जोर दिया है, खासकर तब जब उसने सामाजिक संरचना की अवधारणा को आगे बढ़ाया है। रेडक्लिफ ब्राउन को सामाजिक संरचना की अवधारणा से अलग 'लैवी स्ट्रॉर्स' सामाजिक संरचना को एक प्रतिमान मानता है (1953)। 'लैवी स्ट्रॉर्स' के अनुसार प्रतिमान दो तरह के होते हैं।

1) मैकेनिकल यान्त्रिक प्रतिमान (Mechanical Model)

2) संख्यात्मक प्रतिमान (Statistical Model)

ये दोनों प्रतिमान वास्तविक आंकड़ों के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं। 'लैवी स्ट्रॉर्स' के अनुसार यदि प्रतिमान उसी स्तर का होता है जैसे कि क्षेत्रीय आंकड़े बताते हैं तो हम कह सकते हैं कि वह एक मैकेनिकल प्रतिमान है और यदि उनमें अंतर पाया जाता है तो वह संख्यात्मक प्रतिमान माना जायेगा। उदाहरण के लिये समाज में विवाह के मामले में एक नियम होता है और उम्मीद की जाती है कि हर कोई उसका पालन करेगा। यदि पूरा समाज वास्तव में विवाह के स्वीकृत नियम का पालन कर रहा है तो उस समाज की सामाजिक संरचना मैकेनिकल मानी जायेगी और यदि समाज में आये कुछ परिवर्तनों के कारण जिनमें शिक्षा तथा बाजार आधारित अर्थव्यवस्था शामिल है, ऐसी स्थिति में कई बार समाज के कुछ लोग विवाह के उस नियम का पालन नहीं करते और अपनी बेटी के विवाह के लिये दूल्हा तलाश करने के लिये कोई और तरीका अपनाते हैं तो वे विवाह के स्वीकृत नियम का त्याग कर देते हैं। यदि किसी समाज में मामा की बेटी से विवाह करने का रिवाज कुछ लोगों द्वारा

छोड़ दिया जाता है तो वह प्रतिमान मैकेनिकल नहीं कहलायेगा। तब यह पता लगाना होगा कि कितने लोग समाज में स्वीकृत नियमों के अनुसार शादियां कर रहे हैं और कितने उसका उल्लंघन करते हुए अन्य तरह से शादियां कर रहे हैं। ऐसे में समाज का प्रतिमान संख्यात्मक माना जायेगा।

दूसरे उदाहरण में हम ऐसे समाज को ले सकते है जहां विवाह करने का कोई खास नियम है ही नहीं जैसे कि अमेरिका में। यदि अमेरिका जैसे देश में संख्यात्मक विश्लेषण किया जाय तो पता लगेगा कि वहां पसंद के नियमों का लोग ज्यादा पालन कर रहे हैं जैसे कि वे एक ही जाति अथवा एक ही वर्ग में विवाह करने के लिये बाध्य नहीं हैं। इस प्रकार यदि किसी समाज में विवाह के मामले में स्वीकृत नियम लागू नहीं होते हैं तो वहां संख्यात्मक नियम स्वतः ही चलन में आ जाते हैं इस प्रकार मानव जाति विज्ञान का सामाजिक संरचना को समझने में विशेष योगदान रहता है।

मिथकों के संरचनात्मक विश्लेषण में मिथक अथवा कहानियां उसी क्षेत्र से ली जाती हैं परन्तु उनका विश्लेषण करते समय सम्बन्धित लोगों का योगदान जरूरी नहीं होता है। वास्तव में 'लैवी स्ट्रॉर्स' सलाह देता है कि विश्लेषण करने वाला व्यक्ति उस क्षेत्र के व्यक्तियों का हस्तक्षेप स्वीकार न करे क्योंकि ऐसा करने से विश्लेषण का तर्क संगत आधार नष्ट हो जाता है। इस तरह संरचनावाद का झुकाव निगमात्मक विश्लेषण की ओर रहता है, आगमनात्मक विश्लेषण की ओर नहीं।

बोध प्रश्न

1) संरचनात्मक विश्लेषण में मानव जाति विज्ञान का सहयोग लेना आवश्यक है? इस कथन की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) मैकेनिकल प्रतिमान और संख्यात्मक प्रतिमान से आप क्या समझते हैं? उदाहरण देकर समझाइये।

.....

.....

.....

.....

3.6 समीक्षा

कुछ दिनों तक संरचनावाद छाया रहा, परन्तु बाद में उसकी अनेक कारणों से आलोचना होने लगी। खासकर विश्लेषणों के हस्तक्षेपों तथा उनकी व्याख्याओं पर अनेक प्रकार से भौंहें तनी।

लैट के अनुसार (1987 : 103) - ''क्योंकि संरचनात्मक विश्लेषण विश्लेषण करने वाले के दृष्टिकोण पर अधिक आश्रित रहता था, इसलिए इस बात की संभावना ज्यादा रहती थी कि दो व्यक्तियों के निष्कर्ष एक जैसे न हों। उदाहरण के लिए डायमंड लीच के सृष्टि या

उत्पत्ति की व्याख्या पर माइकल कैरल की समीक्षा को लें तो पता लगता है कि उसने डायमंड लीच पर यह सवाल उठाकर कि उनका यह विश्लेषण कि प्रकाश व दिन जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं और अंधकार तथा रात मृत्यु का, पूरी तरह संतुष्ट नहीं करता, क्योंकि इस विश्लेषण के आधार का विश्वनानीय स्रोत क्या है, उसके बारे में डायमंड लीच ने कहीं जिक्र ही नहीं किया है। संरचनात्मक विश्लेषण के साथ समस्या यह रही कि वह विपरीतता और अनुरूपता पर आधारित रहा।

बाइबिल का उदाहरण देते हुये डायमंड लीच ने अपने विश्लेषण की जो पुष्टि की है, उससे भी कैरोल सहमत नहीं है कैरॉल कहता है कि बाइबिल में ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि रेंगने वाले जानवर पालतू तथा जंगली जानवरों के बीच की कड़ी थे। यदि वे कड़ी रहे होते तो दोनों प्रकार के जानवरों की कुछ समानताएं तो उनमें मौजूद होती। सच तो यह है कि सरीसृप या रेंगने वाले जानवर एक अलग प्रकार के जानवर हैं, उनका श्रेणी पालतू जानवरों तथा जंगली जानवरों से नितांत भिन्न हैं। कैरॉल के अनुसार उत्पत्ति विज्ञान बताता है कि ईश्वर ने तीन प्रकार के जानवरों की रचना की। ये तीनों श्रेणियों एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं, इनके बीच किसी के कोई मध्यस्थता नहीं है। उनका मानना है कि ''डायमंड लीच'' ने अपनी द्विधारी पद्धति को उन चीजों पर लागू किया है जिनमें विरोध की प्रवृत्ति थी ही नहीं''। इसी प्रकार उत्पादन को बढ़ावा देने वाली वर्षों जो नभमंडल को ऊपर अवस्थित है, उसके कारण ही धरती पर उत्पादन होता है, और समुद्री जल की उत्पादन में कोई विरोध नहीं होता, डायमंड लीच का यह कथन भी सत्य नहीं है। अनेक कविताओं का यह उल्लेख है कि धरती पर मौजूद जल स्रोत सिंचाई हेतु इस्तेमाल किये जाते हैं तथा उनका जल भी उत्पत्ति सहभोगी है।

धरती पर हरियाली उगाने में धरती के धरती की भूमिका है यदि नभमंडल के नीचे और ऊपर अवस्थित जल की प्रवृत्ति एक दूसरे की विरोधी है ही नहीं तो नभमंडल समन्वयकारी कैसे हुआ? इसी प्रकार एडम और ईव को डायमंड लीच ने उत्पत्ति विरोधी तथा उत्पत्ति सहयोगी करार दिया है, जबकि दोनों एक शरीर है और सृष्टि सहयोगी है। इस प्रकार यह साबित हो जाता है कि सत्य पर तर्क का आरोपणा करके संरचनात्मक विश्लेषण का सिद्धांत लागू किया गया।

माव्रिन हेरिस जैसे भौतिकवादियों ने भी संरचनावाद की आलोचना की है। उनका आरोप है कि संरचनावाद स्पष्ट तथ्यों की अवहेलना करता है तथा अतिवादी व्याख्यायें करता है। उनका मानना है कि 'लैवी स्ट्रॉर्स' ने अमेरिकन मिथकों की व्याख्या करने में चालाकी बरती है धोखाधड़ी की है। उन्होंने 'लैवी स्ट्रॉर्स' को धोखे-बाज बताया है। धोखे-बाज वह होता है जो चालाकी से मिथ्या बाते बताकर लोगों को मूर्ख बनाता है। इसीलिए उसने जानवरों के बीच 'कोयोज' (coyote) जाति के जंगली कुते को घुसाने जैसा काम बताया। कोपोट शाकाहारी तथा मांसीहारी दोनों प्रकार के जानवरों का शिकार करता है। अतः लेवी-स्ट्रास के अनुसार वह समन्वयकत है। वह खेती और शिकार तथा जीवन व मृत्यु दोनों का प्रतीक है। चालाकी करने वाले व्यक्ति की कोई निश्चित जमीन नहीं होती। वह सहज न स्वाभाविक वृत्तियों से हटकर चलता है। उसकी कोई स्पष्ट सोच नहीं होती। किसी तरह अपनी बात को दूसरों को गले उतारने के लिए वह तर्क देता है, हैरिस के अनुसार बेहतर व्याख्या होती कि कोयोज का एक विशेष दर्जा है, क्योंकि वह होशियार और मौका परस्त जानवर है। कई विद्वानों ने रचनात्मक विश्लेषण को भ्रमपूर्ण बताया है।

मॉरिस गोडलिया ने आस्ट्रेलिया की एबोरजिन जन-जाति की विवाह प्रथा के बारे में 'लैवी स्ट्रॉर्स' के विश्लेषण की आलोचना की है। इस पर मार्क्सवादी सोच का प्रभाव है जिसमें रूपांतरण संरचना के विरोधों के आधार पर चिन्हित किया जाता है।

संरचनात्मक विश्लेषण की ऐतिहासिकता की सबसे ज्यादा आलोचना हुई है। इतिहास तथा रूपांतरण में वह अंतर नहीं करता। ज्यादातर विश्लेषण युगों पुराने मिथकों को लेकर किये गये हैं। कुछ ऐसे संस्थानों का भी विश्लेषण किया गया है जो परिवर्तित नहीं होते। उदाहरण के लिए 'लैवी स्ट्रॉर्स' का जातिगत विश्लेषण ज्यादातर श्रमिकों तथा वर्गों के विश्लेषण को अपना विषय बनाते हैं। विभिन्न सांस्कृतिक सामाजिक ऐतिहासिक तथा राजनैतिक पक्षों को उन्होंने विश्लेषण का विषय नहीं बनाया।

नारीवादियों ने भी 'लैवी स्ट्रॉर्स' की आलोचना की है क्योंकि उसने स्त्रियों को वस्तुओं की तरह आदान-प्रदान किये जाने वाली बताया है। वह यह मानता है कि विवाह हेतु स्त्रियों के आदान-प्रदान से समाजों के बीच सम्बंध स्थायी हो जाते हैं। इसे 'लैवी स्ट्रॉर्स' ने वैश्विक सिद्धांत का हिस्सा तक बताया है।

3.7 सारांश

इस इकाई में हमने संरचनावाद की विस्तार से व्याख्या की है। मिथकों समाज तथा संस्कृति के विश्लेषणों को इसमें समाहित किया गया है। समाजशास्त्र तथा मिथकों के अध्ययन एवं विश्लेषण में संरचनावाद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी इकाई में संरचनावाद की आलोचनाओं पर भी प्रकाश डाला गया हैं विशेष रूप से क्लाउडो लैवी स्ट्रॉस के कार्यों की व्याख्या की गई है। लैवी स्ट्रॉस ने टोटेमवाद सम्बंधों, मिथकों तथा संरचना के अंदर मौजूद निहितार्थों पर विस्तार से काम किया है। मनुष्यों का मस्तिष्क कैसे काम करता है इसका विश्लेषण करने में लैवी स्ट्रॉस ने विशेष जांच ली है।

इसका परिणाम यह हुआ कि उसके अनेक समकालीन विद्वानों ने उसका अनुसरण किया तथा अनेक उससे सहमत नहीं दिखे जिन संरचनाओं पर लैवी स्ट्रॉस ने काम किया है, उनमें से ज्यादातर उसकी स्वयं की रचनायें हैं, वास्तव में वे मौजूद नहीं हैं।

ब्रिटेन का मानव-विज्ञानी एडम लीच संरचनावाद तथा क्रियात्मकता के सिद्धांतों से सहमत नहीं था। वह लेवी स्ट्रॉस महत्वाकांक्षा से संचालित मानता था फिर भी एडमंड लीच ने सरंचनावाद से एक बात जरूर सीखी। उसने लोगों के वास्तविक विचारों पर शोध करना वैश्विक मानसिक संरचना पर शोध करने से ज्यादा जरूरी मान।

संरचनावाद अब ऐतिहासिक बन चुका है जो संरचनाएं यह खोजता है वे समय की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। यह सभी कालों के सभी समाजों पर लागू होता है। इसी कारण संरचनावाद की बड़ी तीखी आलोचनाएं हुई हैं। सही पद्धति वह होती है जो देश और काल दोनों पहलुओं को साथ लेकर चलती है।

बोध प्रश्न

1) संरचनात्मक विश्लेषण की प्रमुख आलोचना कौन-कौन सी हैं। उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) संरचनावादी विश्लेषणों के प्रयोग के कौन से वैकल्पिक तरीके विद्वानों ने तलाश किये थे?

.....

.....

.....

.....

3.8 संदर्भ

''लैवी स्ट्रॉस एण्ड मिथ'' इन एडमंड लीच (एड) द स्ट्रक्चरल स्टडी ऑफ मिथ एण्ड टोटेमिज़्म; लंडन : के. ओ. एल. बुरीज़ : रूटलेज़ पेज़ 91-118

''लीच जैनेसिज़ एण्ड स्टक्चरल एनेलाइसेज : ए क्रिंतिकल एवोल्यूशन'' : पी माइकल कैरॉल 1977 : अमेरिकन एथनोलॉजिस्ट पेज़ 663-677

द फाउंडेशन्ज़ ऑफ स्टक्चरलिज़्म ससैक्स : सांइमन कलोर्क, 1981 द हारवैस्टर प्रैस

प्रिमिटिव क्लासीफिकेशन : दुर्खीयम, एमिली, मार्शल मॉस 1963 : यूनोवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रैस, शिकागो

द स्ट्रक्चरल स्टडी ऑफ मिथ एण्ड टोटेमिज़्म : डायमंड लीच, 1967 : रूटलैंज़ लंडन एण्ड न्यूयॉर्क

लैवी स्ट्रॉस इन द गार्डन ऑफ ईडन : एन एक्ज़ामिनेशन ऑफ सम रीसेंट डिवैलपमैंटस इन द एनेसाइसेज़ ऑफ माइथ : एडमंड लीच 1970 : नेल्सन हाईस एण्ड टाना हाईस

द ह्यूमन एक्सपर्टाइज़ : जेमस लैट 1987 वैस्ट न्यू प्रैस, बोल्डर्स

सोशल स्ट्रक्चर इन ए एल क्रोबर एंथ्रोपोलॉजी टुडे : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस, 1953 : शिकागों यूनीवर्सिटी प्रैस शिकागो (पेज़ 524-553)

''द स्ट्रक्चरल स्टडी ऑफ माइथूस'' : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस 1955 : द जर्नल ऑफ अमेरिकन फोकलोर वोल्यूम 163 न. 270 (पेज़ 428-444)

द एलीमेंट्री स्ट्रक्चर्स ऑफ फिनशिप क्लाउडो लैवी स्ट्रॉस 1963 : बोकत प्रैस, बोस्टन

द बीयर एण्ड द बारबर : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस 1963 : जर्नल ऑ द रॉयल एन्थ्रोपॉलोजीकल इंस्टीटयूट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयर लैंड, 93 : 1-11

स्ट्रक्चरल एंथ्रोपोलोजी, वोल्यूम. 1 क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस : बेसिक बुक्स न्यूयार्क।

द सैवेज़ माइंड : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस 1966 : यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रैस, शिकागो।

स्ट्रक्चरल एंथ्रोपोलॉजी, वोल्यूम. 11 : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस 1976 : बेसिक बुक्स : न्यूयार्क।

अन्य संदर्भ

द फाउंडेषन ऑफ स्ट्रक्चरेलिज़्म, ससैक्स : साइमन क्लार्क 1981 द हारवैस्टर प्रैस।

द स्ट्रक्चरल स्टडी ऑफ माइथ एण्ड टोटेमिज़्म : डायमंड लीच 1967 रूटलैज़ न्यूयार्क एण्ड लंडन।

द एलीमेंट्री स्ट्रक्चर्स ऑफ फिनशिप क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस : बीकन प्रैल, बोस्टन।

द सैवेज माइंड : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस 1966 : शिकागों यूनीवर्सिटी प्रैस, शिकागों।

शब्दकोष

फिलोमिना: कोई दृश्य घटना

लेग्यू: भाषा सम्बंधी शब्द जिसे फरदीनंद डी सॉसर ने भाषा सम्बंधी नियम अथवा भाषा की संरचना के लिए इस्तेमाल किया था। संपूर्ण व्याकरण प्रणाली जो किसी विशेष समुदाय द्वारा बोलने में इस्तेमाल की जाती है, उसे लेंग्यू कहा जाता है।

संरचनावाद: संपूर्ण विश्लेषण जो भाषाई तकनीक के इस्तेमाल द्वारा उस विधि को समझाने का प्रयास करता है जिससे पूरी बात समझ में आ जाये। इसमें समूचा सम्पर्क एवं सामाजिक व्यवहार समाहित होता है।

टोटेमवाद: एक धर्म, जिसमें पशु, पेड़ या अन्य चीज पूज्य माना जाता है और पूरा समुदाय उससे मनवांछित फल प्राप्त करता हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 द्वंद्व परिप्रेक्ष्य*

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 शास्त्रीय सिद्धांतकार

4.3 आधुनिक संघर्षवादी विचारक

4.4 विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत

4.5 संघर्ष के सिद्धांत की वर्तमान प्रवृतियां

4.6 सारांश

4.7 सन्दर्भ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जान सकेंगेः

- समाजशास्त्र में द्वंद्व की अवधारणा का स्वरूप क्या है?;
- संघर्ष के समाजशास्त्र की शास्त्रीय अवधारणा;
- प्रमुख विचारकों का योगदान; तथा
- आधुनिक समाज संघर्ष के सिद्धांत को किस रूप में स्वीकार करता है।

4.1 प्रस्तावना

आरंभ के दौर में समाजशास्त्रीय विचारक सामाजिक अखंडता के संरचनात्मक सिद्धांत में विश्वास नहीं रखते थे। संरचनात्मकता व द्वंद्वात्मक सिद्धांतों में आधारभूत अंतर यह है कि दोनों के गर्भ में परिवर्तन की प्रवृत्ति अनिवार्य रूप से मौजूद रहने के बावजूद उनके अध्ययन के केंद्र अलग-अलग हैं। यद्यपि समाजशास्त्रीय सिद्धांत में द्वंद्वात्मकता की परिकल्पना को बीसवीं शताब्दी में ही स्वीकार किया गया तथा इसे राल्फ दहेंदोर्फ और कॉजर की किताबों में समाजशास्त्र की उपशाखा के रूप में मान्यता मिली, परंतु द्वंद्वात्मक सिद्धांत प्राचीन ग्रीक विचारक थूसी डाईडस के समय में ही अपना अस्तित्व पा चुका था। द्वंद्वात्मक सिद्धांत तथा प्रक्रियात्मक सिद्धांत ढांचा और परिवर्तन दोनों को ही केंद्र में रखकर चलते हैं, दोनों के सरोकार दुनिया के सभी समाजों से अनिवार्य रूप से जुड़े हैं। टकराव और सामाजिक परिवर्तन सामाजिक ढांचों में तभी जन्म लेते हैं जब हम बदलाव चाहते हैं। इसके लिए हमें संपूर्णता के साथ सामाजिक ढांचे पर विचार करना होगा क्योंकि बदलाव सदा सामाजिक ढांचे में ही आते हैं। यद्यपि क्रियात्मकतावादी सिद्धांतों के ठीक विपरीत टकराव के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि जब सामाजिक ढांचे में तेजी से परिवर्तन आते हैं तो उनके केंद्र में टकराव एवं द्वन्द्व अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। टकराव के कारण कभी-कभी समाज में रचनात्मक परिवर्तन आते हैं जो समाज को एक स्थिरता प्रदान करते हैं और कभी-कभी सामाजिक विसंगतियां बढ़ जाती हैं और समाज में अस्थिरता आ जाती है। इस प्रकार द्वंद्वात्मक सिद्धांत में भी सामाजिक अखंडता और स्थिरता की प्रवृति

*यह इकाई प्रो. सुभद्रा चन्ना के द्वारा लिखी गई है।

उसी प्रकार देखने को मिलती है जिस प्रकार प्रक्रियात्मक सिद्धांत में, अंतर केवल इतना रहता है कि हम इन दोनों सिद्धांतों को किस प्रकार देखते हैं। समाज के निर्माण, विकास, परिवर्तन तथा सामाजिक संगठनव संबंधों की व्याख्या करते समय इनका इस्तेमाल किस प्रकार करते हैं। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समूहों को आधारभूत इकाई माना जाता है, व्यक्तियों को नहीं। दूसरे शब्दों में व्यक्तियों के बीच होने वाले टकराव बौद्धिक हित के विषय नहीं है, अपितु समूहों के मध्य के विषय हैं। ऐसे समूहों की पहचान करना तथा उनका वर्गीकरण करना जो सक्षम होते हैं तथा जिनमें निरंतर टकराव होते रहते हैं वास्तव में द्वंद्वात्मक सिद्धांत के विषय हैं।

समाज के अंदर स्तरीकरण, असमानता तथा कुछ लोगों के द्वारा अन्य लोगों पर अपना आधिपत्य बनाए रखने की प्रवृत्ति और उनसे जुड़ी गतिविधियां द्वंद्वात्मक सिद्धांत के आधारभूत विषय हैं। समाज में होने वाले कार्य प्रायः दो प्रवृत्तियों से ज्यादा प्रेरित होते हैं। एक- असमानता को दूर करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों से तथा दूसरा आधिपत्य की प्रवृत्ति के विरोध के रूप में। समाजों में जो टकराव की स्थिति बनी रहती है उसका प्रमुख कारण है सामाजिक संसाधनों का असमान वितरण। असमानता का पीढ़ी दर पीढ़ी अस्तित्व सामाजिक टकराव का कारण भी है और प्रभाव भी। यही कारण है कि सामाजिक टकराव कभी थमते नहीं। जब टकराव बहुत बढ़ जाते हैं तो समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आते हैं जिनके कारण सामाजिक संगठन के नए सिद्धांतों का जन्म होता है और इस बात पर जोर दिया जाता है कि संसाधनों का सही तरीके से फिर से वितरण किया जाए। उदाहरण के लिए- रूस में जब क्रांति हुई तो राजशाही को उखाड़ फेंका गया और उसके स्थान पर एक नया सामाजिक ढांचा तैयार हुआ जिसे साम्यवादी सामाजिक ढांचा कहा गया और साम्यवादियों ने सत्ता संभाली। आम जनता और राजशाही के समर्थकों के बीच जबरदस्त टकराव हुआ था और वह बढ़ते-बढ़ते इस स्तर पर पहुंच गया था कि क्रांतिकारियों ने पूरे शाही परिवार का कत्ल कर दिया और सत्ता के ढांचे को पूरी तरह बदल डाला।

समाज में असमानता का जन्म शक्ति के आसमान वितरण के कारण ही हुआ है और स्वयं असमानता ही असमान वितरण का कारण भी बनती है। अतः हम कह सकते हैं कि शक्ति के असमान वितरण से असमानता का जन्म होता है और यही असमानता शक्ति के असमान वितरण की प्रवृति को जन्म देती है। इस प्रकार असमानता के विरोधियों तथा स्थितिवादियों के बीच संघर्ष तथा टकराव की स्थिति सदा बनी रहती है। द्वंद्वात्मक सिद्धांत को मानने वालों की अगली पीढ़ी का सदा यह प्रयास रहता है कि वह यथास्थिति वादका विरोध करे और नियंत्रण एवं आधिपत्य के विभिन्न स्वरूप जो समाज में मौजूद हैं उन्हें तोड़ कर आधुनिक प्रगतिशील समाज का निर्माण करे। द्वंद्वात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते समय अध्ययन कर्ताओं को शब्दों का इस्तेमाल करते समय बहुत सावधान रहना होगा, क्योंकि कई बार एक जैसे शब्दों के अर्थ अलग-अलग होते हैं जैसे विभिन्नता एवं स्तरीकरण तथा विरोध एवं टकराव। इस प्रकार जरूरी नहीं है कि स्तरीकरण के समय विभिन्नता अनिवार्य रूप से मौजूद हो जब तक कि असमानता की स्थिति नहीं होती, अर्थात असमानता की स्थिति में विभिन्नता की बात आती है, सामाजिक स्तरीकरण में नहीं। तथा विरोध आवश्यक रूप से टकराव में नहीं बदलता है जब तक कि विरोध करने वालों के मन में शक्ति प्रदर्शन युक्त भिड़ंत की प्रवृत्ति मौजूद ना हो। टकराव की क्षमता व संभावनाओं का मतलब यह नहीं है कि वास्तव में टकराव होगा ही और यदि टकराव हो भी जाए तो भी हमेशा यह जरूरी नहीं है कि उससे समाज में कोई बड़ा परिवर्तन आ जाए।

4.2 शास्त्रीय सिद्धांतकार

आरंभिक दौर में टकराव के सिद्धांत बृहद ऐतिहासिक थे। इन सिद्धांतों के हिसाब से जो टकराव हुए उनके कारण समाजों में बड़े स्तर पर परिवर्तन आए। ये टकराव बड़े सामाजिक समूहों के बीच हुए थे जिनके स्वार्थ व लक्ष्य एक दूसरे के धुर विरोधी थे। इन टकरावों के पीछे ऐतिहासिक कारण थे और इसीलिए इन के फलस्वरूप व्यापक परिवर्तन हुए।

इस कोटि के सिद्धांतकारों का लक्ष्य समाज के विभिन्न वर्गों के बीच भारी टकराव उत्पन्न कराना और उसके द्वारा आमूल-चूल परिवर्तन लाना था। इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्धांतकार 19वीं सदी के कार्लमार्क्स थे। उनके ऐतिहासिक भौतिक द्वंदात्मक सिद्धांत ने सामाजिक बदलाव के उद्देश्य से टकराव के सिद्धांत को जन्म दिया।

आर्थिक संसाधनों के असमान वितरण से समाज में दो वर्ग स्वतः ही बन जाते हैं। एक वर्ग उन लोगों का होता है जिनके पास अधिक संपत्ति एकत्रित हो जाती है और दूसरा वर्ग उन लोगों का बन जाता है जिनके पास बहुत कम संपत्ति होती है या नहीं होती। अधिक संपत्ति तथा दबदबे वाले लोग कम संपत्ति तथा कम दबदबे वाले लोगों का शोषण करने लगते हैं जिससे समाज शोषक और शोषित दो वर्गों में बँट जाता है। जिनके पास संपत्ति अधिक होती है, उन्हें संपन्न अथवा अमीर कहा जाता है और जिनके पास संपत्ति बहुत कम होती है अथवा होती ही नहीं उन्हें गरीब कहा जाता है। पूंजी के आधार पर उन्हें पूंजीपति तथा श्रमिक भी कहा जाता है। साम्यवादी घोषणा पत्र में उन्हें पूंजीपति तथा मजदूर कहा गया है। यह पूंजीपति मजदूर के काम के बदले उसे पूरा वेतन नहीं देता, उसका शोषण करता है। इसके पीछे पूंजीपति का उद्देश्य मजदूरों को अपने अधीन बनाए रखना तथा उन पर शासन करना होता है। कार्ल मार्क्स ने इस वर्ग भेद के पीछे कारण के रूप में विद्यमान सूक्ष्म अंतर को नयी पहचान दी थीद्य कार्ल मार्क्सने इस टकराव की स्थिति को बारीकी से समझने के लिए विभिन्न कालावधियों के समाजों का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया और उसके कारण उत्पन्न होने वाले टकराव की व्यापक व्याख्या की और अपने सामाजिक विकास के सिद्धांत को जन्म दिया।

अपने सामाजिक विकास के सिद्धांत के आधार पर कार्ल मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि सामंतवाद अंततः पूंजीवाद को जन्म देगा और पूंजीवादियों के शोषण व अत्याचारों से तंग आकर शोषित एकजुट होंगे और उनके बीच टकराव से जो क्रांति होगी उससे समाजवाद आएगा, सर्वहारा का शासन होगा और वर्ग भेद हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा और समाज में स्थिरता आ जाएगी। परंतु इतिहास साक्षी है कि ऐसा नहीं हुआ। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कार्ल मार्क्स का सिद्धांत राजनैतिक रूप से सही साबित नहीं हुआ। यद्यपि द्वंदवाद का सिद्धांत अपनी जगह सही है क्योंकि विरोधी ताकतें स्वाभाविक रूप से आपस में टकराती हैं और उसके परिणामस्वरूप समाज का एक तीसरा स्वरूप सामने आता है जिस में स्थिरता होती है। यह तीसरी अवस्था इतिहास की प्रेरक शक्ति होती है जो समाज में रचनात्मक परिवर्तन लाने के लिए जरूरी है। यही समाजशास्त्र में टकराव अथवा द्वन्द्वात्मक सिद्धांत का आधार है। समाजशास्त्र का द्वन्द्वात्मक सिद्धांत वास्तव में गैर-राजनैतिक है। यह न तो साम्यवाद का पक्ष लेता है, न पूंजीवाद का, न ही किसी अन्य राजनैतिक विचारधारा का। इसका सीधा सा उद्देश्य विभिन्न सामाजिक समूहों तथा सामाजिक ताकतों की पहचान करना है जिनके दृष्टिकोण के कारण समाज में बदलाव आते हैं और समाज के नए ढांचों तथा संगठनों का जन्म होता है।

दूसरा वर्गवाद का सिद्धांत मैक्स वेबर का है। उन्होंने कार्ल मार्क्स के सिद्धांत में संशोधन किया था। इस संसोधन के आधार पर उन्होंने यह साबित किया कि समाज में स्तरीकरण

की प्रक्रिया के कारण जो वर्ग दिखाई पड़ने लगते हैं उनके पीछे केवल आर्थिक कारण नहीं होते। समाज में आर्थिक आधार पर जो वर्ग बनते हैं उनके अलावा हैसियत गुट तथा ताकत गुट भी बनते हैं जिनका आर्थिक संसाधनों से कुछ लेना देना नहीं होता है। इन गुटों के कारण भी समाज में स्तरीकरण होता है। वेबर सामाजिक संगठनों पर भी जोर देते हैं। समाज में बनने वाली अनेक संगठनों के बीच होने वाले टकरावों के फलस्वरूप भी समाजों में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार संगठनों के द्वारा समाज स्वयंप्रभुत्व एवं नियंत्रण की स्थिति उत्पन्न कर लेता हैं। वेबरने तीन प्रकार के आदर्श संगठनात्मक ढांचों का विवरण दिया है- आदर्श स्वरुप प्रणाली, नौकरशाही तथा पैदक। किसी भी प्रकार कि व्यवस्था हो- राज्य स्तर,चर्च स्तर अथवा आर्थिक जगत की, हर व्यवस्था में प्रभुत्व इन तीनों रूपों में ही विद्यमान रहता है। वेबरने प्रभुत्व के स्वरूपों की व्याख्या करते हुएयह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार ये समाज द्वारा स्वीकार कर लिए जाते हैं, और शोषण तथा भेद-भावपूर्ण होते हुए इनकी सत्ता बनी रहती है। कुछ सामाजिक तंत्र इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, समाजीकरण आदि सामाजिक तंत्र लोगों पर इस बात के लिए दबाव बनाते हैं कि वे सामाजिक संस्थानों का प्रभुत्व स्वीकार करें। गिरजाघर, राज्य आदि संस्थानों के प्रति लोगों में निष्ठा कम से कम तब तक तो जरूर बनी रहती है जब तक कि उनका कोई अन्य ऐसा विकल्प अस्तित्व में नहीं आता जो उनकी न्यायसंगतता और ढांचे को चुनौती दे सके। इस प्रकार विरोधी ताकतों को भी संगठित होकर अपनी न्यायसंगततातथा ढांचागत व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए निरंतर प्रयास करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए नए राजनैतिक दल को तार्किक एवं विधि सम्मत, यहां तक कि पारंपरिक रूप से भी सक्षम नेतृत्व का परिचय देना पड़ता है, भले ही उसका नेता करिश्माई होद्य अगली पीढ़ी को नेतृत्व देने के लिए या लोकतंत्र में चुनाव प्रणाली का सहारा लेना पड़ता है या वंश परंपरा से मिली राजनैतिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में एक धार्मिक आंदोलन हुआ और कैथोलिक चर्च की सत्ता के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा गया और उसके परिणामस्वरूप धार्मिक सुधार हुएद्य टकराव के बाद यह परिणाम सामने आया कि नई धार्मिक विचारधारा अस्तित्व में आ गई जिसे प्रोटेस्टेंट नाम दिया गयाद्य और बाद में उसके संचालन के लिए भी नए संगठनात्मक नियम बनाने पड़े,उसकी आंतरिक व्यवस्था कायम करनी पड़ी और अन्य संगठनों की तरह उसके उत्तराधिकार की परंपरा भी सुनिश्चित करनी पड़ी। यह सब मार्टिन लूथर किंग के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण संभव हो सका। परंतु अब प्रोटेस्टेंट चर्च का कोई करिश्माई नेता नहीं है इसके सदस्यों को अंतरिम कानूनों एवं नियमों के अनुसार प्रशिक्षण दिया जाता है और व्यवस्था संभालने के लिए विभिन्न पदों पर नियुक्ति परीक्षाओं के आधार पर होती है। यद्यपि कैथोलिक चर्च के नियमों व कानूनों में परिवर्तन लाने के लिए बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा था और बहुत बड़ा बदलाव भी हुआ था परंतु यह संघर्ष और बदलाव कोई अंतिम संघर्ष या अंतिम बदलाव नहीं है। अब भी खूनी संघर्ष होते हैं जैसे कि आयरलैंड में हुआ और नई व्यवस्था तथा उत्तराधिकार के नए नियमों के आधार पर प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयाई काम कर रहे हैं इस तरह के टकराव एवं बदलाव समाजों में पहले भी होते रहें हैं और आगे भी होते रहेंगे। सामाजिक तंत्र ऐसे ही काम करता है।

समाजशास्त्र के विकास में मैक्स वेबर का बहुत बड़ा योगदान रहा है और उनकी छाप भी उस पर दिखाई पड़ती है। फिर भी उनके सिद्धांतों और विचारों को अंतिम नहीं माना जा सकता। उनके बाद जो नए समाजशास्त्री आए उन्होंने मैक्स वेबर के सिद्धांत का अक्षरशः पालन नहीं किया। उन्होंने अपने नए सिद्धांत बनाएं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री लेविस कोसर का भी वर्ग भेद के द्वंदात्मक सिद्धांत की प्रतिस्थापना में विशेष योगदान रहा है। उनका जन्म 1913 में बर्लिन में हुआ था। पेरिस में सोरबोन में उन्होंने अध्ययन किया और द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मन वासी होने के कारण उन्हें गिरफ्तार किया गया था। बाद में उन्होंने

अमेरिका में शरण ले ली और न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में रॉबर्ट के मर्टन के मार्गदर्शन में अनुसंधान कार्य किया और पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की। कोजर ने मैक्स वेबर के सिद्धांतों का पालन नहीं किया। इसके स्थान पर उन्होंने महान समाजशास्त्री सिम्मल के विचारों का अनुसरण किया। उनका विचार यह है कि टकराव वंशानुगत रूप से केवल समाजों में नहीं होते बल्कि मनुष्यों के व्यक्तित्व में ही होते हैं। टकराव हम मनुष्यों की प्रकृति के अनिवार्य अंग हैं। कोजर ने पूर्ण एवं आंशिक पृथक्करण के सिद्धांत को जन्म दिया। पूर्ण प्रथक्करण तब होता है जब किसी मानव समूह अथवा समुदाय के सामने संसाधनों की इतनी कमी हो जाती है कि उनके जीवन को खतरा पैदा हो जाता है। उनकी आवश्यक आवश्यकतायें जैसे भोजन, पानी, चिकित्सा और घर उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाते। आंशिक पृथक्करण की प्रकृति समाज में तब जन्म लेती है जब लोगों के पास भरपूर संसाधन नहीं होते और गरीब और अमीर की खाई बहुत बढ़ जाती है। प्रायः यह देखने में आता है कि अत्यधिक गरीबी में गुजारा करने वाले लोग बहुत कम हिंसक होते हैं क्योंकि वे ऐसा करने का साहस नहीं जुटा पातेद्य दूरस्थ ग्रामों में रहने वाले लोग भुखमरी के शिकार हो जाते हैं, भूख के कारण उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। फिर भी ऐसा कभी सुनने में नहीं आया कि ऐसे लोगों ने अपनी भूख मिटाने के लिए संघर्ष किया हो। कोजर का यह मानना है कि संपूर्ण पृथक्करण की अवस्था से लोग जब आंशिक पृथक्करण की अवस्था में आते हैं तो उनमें संघर्ष करने की प्रवृत्ति ज्यादा बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए दलित जब गरीबी, पिछड़ेपन और अभाव के कारण समाज की मुख्यधारा से बिल्कुल अलग-थलग पड़ गए थे तो वे पूर्व पृथक्करण की अवस्था में थे, तब उन्होंने कोई संघर्ष नहीं किया लेकिन जब उन्हें दलित आंदोलन का सहारा मिला तो वे पहले की तुलना में टकराव में अधिक विश्वास करने लगे और ज्यादा हिंसक हो गए। यही वजह है कि दलित आंदोलन ग्रामीण अंचलों से आरंभ नहीं हुआ। यह शहरी क्षेत्रों से जहां उद्योग धंधों ने जन्म लिया और गाँवों से पलायन कर के लोग मजदूरी करने शहरों में पहुंचे तब दलित आंदोलन का जन्म हुआ। उसकी वजह यह थी कि जब वे कुछ पैसे कमाने लगे तो वे सामूहिक रूप से कार्य करने लगे। कार्य स्थलों पर बने समूह बड़े होते गए और उनमें साथ खड़े होने और संगठित होने की प्रवृत्ति जन्मी। ऐसे में उन्हें बी.आर.अंबेडकर जैसे करिश्माई नेता का नेतृत्व मिला और राष्ट्रव्यापी दलित आंदोलन ने जन्म लिया। यदि गाँवों में समाज की मुख्यधारा से पूरी तरह कटे और महा पिछड़े लोग रोजगार की तलाश में शहर नहीं आते तो वे संपूर्ण पृथक्करण की अवस्था से आंशिक पृथक्करण की अवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते और संघर्ष की भावना उनके अंदर जन्म नहीं ले पाती। यद्यपि वे वहां शोषण की चरम सीमा में जी रहे थे इससे कोसर का संपूर्ण पृथक्करण तथा आंशिक पृथक्करण का सिद्धांत सही साबित होता है।

कोजर ने विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों एवं परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले टकरावों के विभिन्न स्तरों की भी पहचान की है। जब लोग अपने उद्देश्यों को पूरी तरह समझ लेते हैं और उन्हें पाने के लिए कार्यरत होते हैं तब उनके उद्देश्य चाहे तर्कसंगत हो अथवा न हो उनकी विरोध करने की प्रवृत्ति अत्यधिक ऊंचाई पर नहीं पहुंच पाती। उदाहरण के लिए यदि काम करने वाले लोगों को अच्छे वेतन मिलने की उम्मीद हो और उन्हें अपने आर्थिक हालात के बेहतर होते जाने की संभावना हो तो उनके विरोध करने की प्रवृत्ति कम होती चली जाएगी और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति यदि पूरी तरह हो जाए तो टकराव की स्थिति वही खत्म हो जाएगी। संघर्ष करने वालों में हिंसा और विरोध की प्रवृति बहुत तेज होती है। जब वे अपने उद्देश्यों की ओर भावनात्मक होकर आगे बढ़ रहे होते हैं और उद्देश्यों तक पहुंचने की संभावना स्पष्ट नहीं होती, इस अवस्था में आंशिक रूप से पिछड़े हुए लोग भावात्मक रूप से उद्वेलित होते हैं इसीलिए वे अधिक हिंसक हो जाते हैं। उदाहरण के लिए धार्मिक पहचान, नैतिक पहचान अथवा राष्ट्रीय से जुड़े हुए मामलों को ले तो हम पाएंगे कि

वहां संघर्ष की प्रवृत्ति बहुत तेज होती है। इसका कारण यह होता है कि इन मामलों में उनके उद्देश्य तर्कसंगत नहीं होते, बल्कि वे सब भावनात्मक उन्माद से भरे होते हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयायिओं के बीच भीषण टकराव की स्थिति आज भी बनी हुई है और उनके बीच खूनी झड़पों के समाचार आते रहते हैं।

कोजर ने टकराव अथवा द्वन्द के क्रियात्मक पहलुओं को दो भागों में विभाजित किया है- बाह्य द्वन्द एवं आंतरिक द्वन्द्व। सामाजिक समूहों में आंतरिक द्वन्द्व भी होते हैं और विभिन्न समाजों के बीच टकराव की स्थिति पाई भी जाती है। आंतरिक टकराव बार-बार होते रहते हैं, परंतु इतने गंभीर नहीं होते। जब दो या दो से अधिक विपरीत विचारों वाले समूह एक साथ रहने को विवश होते हैं तो उनके बीच टकराव की स्थिति प्रायः बनी रहती है। टकराव बार-बार होते हैं परंतु आर-पार के नहीं होते, उनकी धार अत्यधिक तीव्र नहीं होती। काले और गोरे व्यक्ति अमेरिका में एक साथ रहते हैं, हिंदू और मुसलमान भारत में एक साथ रहते हैं, कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयाई ब्रिटेन में एक साथ रहते हैं उनके बीच तनाव की स्थिति प्रायः बनी रहती है। छोटे-मोटे टकराव भी होते रहते हैं परंतु ये टकराव इस स्तर पर कभी नहीं पहुंच पाते कि भीषण रक्तपात में बदल जाएँ और फिर से एक साथ रहने की स्थिति फिर से उत्पन्न न हो सके। समाज के अंतरिम नियमों एवं कानूनों के द्वारा राज्य की व्यवस्था आदि के माध्यम से छोटे स्तर के टकरावों एवं तनावों को दूर कर दिया जाता है और फिर सब मिलकर रहने लगते हैं। छोटे स्तर पर होने वाले टकरावों का एक फायदा यह होता है कि इससे प्रशासनिक प्रणाली में सुधार आ जाते हैं और लोगों के बीच आपसी समझ का स्तर बढ़ जाता है। मजदूरों और व्यवस्थापकों के बीच संबंध बेहतर हो जाते हैं, श्रमिक कानूनों में सुधार हो जाते हैं। बाह्य संघर्ष अंततः आंतरिक समरसता को जन्म देते हैं और विभिन्न समूहों के बीच फिर से टकराव न हो इस उद्देश्य से उनमें रहने वाले लोगों को अपनी अपनी सीमाओं को पहचानने और उनका ध्यान रखने की आदत पड़ जाती है। इस प्रकार बाह्यतथा आंतरिक टकरावों के परिणाम अंततः सामाजिक समरसता लाने में सहयोगी ही होते हैं।

4.3 आधुनिक संघर्षवादी विचारक

आधुनिक युग में समाजशास्त्र में संघर्ष के सिद्धांत को स्थापित करने वालों में राल्फ डहरेन्डोर्फ, का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। राल्फ डहरेन्डोर्फ भी जर्मन थे। लंबे समय तक वे "लंदन स्कूल आफ इकोनॉमिक्स" के निदेशक रहे। इसी दौरान उन्होंने समाजशास्त्र में संघर्ष के सिद्धांत को पहचान दी और बड़ी संख्या में इस सिद्धांत को मानने वाले अस्तित्व में आए। अपने समय के सामाजिक सिद्धांतों का अध्ययन करने और समझने के बाद राल्फ डहरेन्डोर्फइस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मार्क्सवाद और प्रक्रियात्मक संरचनात्मकतावाद दोनों ही सिद्धांत आधुनिक युग की औद्योगिक पूंजीवादी समाजों की व्याख्या करने में असमर्थ हैं। मार्क्सवाद की अवधारणा आधुनिक समकालीन लोकतांत्रिक पद्धति की प्रवृत्तियों को समझने और उसकी व्याख्या करने में पूरी तरह असफल रही हैं, क्योंकि समकालीन लोकतांत्रिक समाजों में सहमति एवं मिलकर रहने की भावना विशेष रूप से देखने को मिलती हैं। प्रक्रियात्मक संरचनावाद समकालीन समाजोंमें होने वाले परिवर्तनों की पहचान करने में असमर्थ हैं और मार्क्सवाद का सिद्धांत टकराव और संघर्ष को केंद्र में रखकर चलता है, वह आधुनिक समाज की संरचना की कल्पना नहीं कर सकता। आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की विशेषता यह है कि उसमें एकता और टकराव दोनों ही ताकतें साथ-साथ चलती दिखती हैं। ऐसे समाज अब कम देखने को मिलते हैं जहां विरोध और एकत्व दोनों ही मौजूद न हो। कार्ल मार्क्स की कल्पना में जो सामाजिक ढांचा था वह एक द्वंद्वात्मक मॉडल है जिसमें

दो वर्गों के बीच विरोध सदा विद्यमान रहता है। जबकि आधुनिक समाज इतना जटिल है कि यहां यह जान पाना संभव ही नहीं है कि समाज में कितने प्रकार के वर्ग हैं और कैसी कैसी विविधता विद्यमान है। इस समाज को कार्ल मार्क्स के सिद्धांतानुसार दो वर्गों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। अब समाज में शोषक और शोषित वर्ग अलग-अलग नहीं दिखते। आधुनिक औद्योगिक समाज में मजदूरों के संघ मौजूद हैं जो उनकी मांगों व समस्याओं को उन्हीं के सामूहिक बल से उठाते हैं और उनके समाधान निकाल लेते हैं। उनकी मदद के लिए कानूनी ढांचा भी मौजूद है। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ तथा मानवाधिकार आयोग जैसे संगठन भी है जो वैश्विक स्तर पर मजदूरों की मांगों तथा उनके अधिकारों के समर्थन में आवाज उठाते रहते हैं।

संपत्ति पर निजी अधिकार तथा एकाधिकार की स्थिति भी अब कम होती जा रही है। बाजार में संयुक्त पूंजी कंपनियां अस्तित्व में आ चुकी है जिनके मालिकाना हक पूंजीपतियों के पास भी होते हैं और कार्यरत प्रबंधकों तथा शेयरधारकों के पास भी। कंपनियों सबकी में संयुक्त भूमिकाएं होती हैं। डहरेन्डोर्फ ने औद्योगिक समाज में वर्ग तथा वर्ग-संघर्ष पर बहुत काम किया है। उन्होंने वर्ग की परिभाषा देते हुए कहा है – "समाज में वर्ग से अभिप्रायः संगठित अथवा असंगठित मानव-समूहों से है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिल जुलकर रहने वाले संगठनों में रुचि रखते हैं। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रुचियों का मौजूद रहना यह साबित करता है कि वर्गों में सदा संघर्ष की भावना निहित रहती है। वर्गों में रुचि के अनुपात के आधार पर तथा संपत्ति तथा सत्ता की प्रकृति की जटिलता के आधार पर डहरेन्डोर्फवर्गों को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं– 1) आदेशात्मक वर्ग, 2) आज्ञापरक वर्ग।

सत्ताधारी वर्ग तथा सत्ता रहितवर्ग के बीच टकरावव संघर्ष की स्थिति स्वाभाविक रूप से बनी रहती है। इस स्थिति की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि समाज में वर्ग विशेष परिस्थिति में ही बने रहते हैं क्योंकि कुछ लोग एक जगह जहां प्रभुत्व धारण किए होते हैं वहीं दूसरी ओर वे दूसरी जगह प्रभुत्वहीन होते हैं। अतः समाज में वर्ग सदा बने ही रहेंगे यद्यपि समाज में उनकी कोई ढांचागत पहचान नहीं होगी। इसीलिए प्रभुत्व के संरचनात्मक तथा स्थिर अनुक्रम को डहरेन्डोर्फस्तर की संज्ञा देता है तथा वर्ग की अवधारणा को वास्तविक समाज की गत्यात्मक प्रवृत्ति मानता है। द्वंद्वात्मक सिद्धांत को मानने वाला दूसरा महत्वपूर्ण विचारक गेरहार्ड लेंस्की है। बीसवीं शताब्दी तक समाजशास्त्री प्रभुत्व या सत्ता को बहुत महत्व देते थे। समाज में प्रभुत्व किस प्रकार प्राप्त किया जाता था और उसका इस्तेमाल किस प्रकार किया जाता था, वे उसे आर्थिक श्रेणी पर आधारित वर्ग की शक्ति अथवा सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया का परिणाम नहीं मानते थे। 1966-1975 में लेंस्की ने वर्ग को एक जैसी हैसियत के व्यक्तियों का समूह करार दिया जो समाज में लगभग बराबर सामर्थ्य, महत्व व प्रतिष्ठा वाले होते हैं। आधुनिक युग के समाजशास्त्रियों को यह बात समझ में आ गई है कि समाज में शक्ति का खेल चलता है जो अधिक गतिशील, बहुआयामी और विविधताओं से भरा होता है। यह शक्ति किसी एक स्थान अथवा व्यक्ति में न होकर अनेक पद व दायित्व संभालने वाले व्यक्तियों में निहित होती है तथा इसे प्राप्त करने के स्रोत भी अनेक होते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि शक्ति के वितरण का आधार क्या है? किसे क्या मिलता है और किस आधार पर मिलता है?

इस प्रकार वर्ग की अवधारणा आधुनिक युग में वर्गीय शक्ति की अवधारणा में बदल गई। आधुनिक समाज में शक्ति के विविध स्तर हैं। इसीलिए नियंत्रण के भी अनेक स्तर होते हैं और कंपनी की संरचना की तरह विभिन्न स्तरों पर बड़ी संख्या में लोग दायित्व संभालते हैं। यह संभव है कि प्रशासनिक शक्ति से युक्त प्रबंधकों को उद्यम में होने वाले मुनाफे में भागीदारी न मिले, परंतु कंपनी में काम करने वाले कर्मचारी सामूहिक रूप से दबाव बनाकर

कंपनी के मुनाफे में हिस्सा ले सकते हैं। इस प्रकार प्रभुत्व व नियंत्रण का मतलब हमेशा यह नहीं होता कि प्रभुत्वधारी तथा नियंत्रण करने वाले लोगों को उद्यम में होने वाले लाभ का हिस्सा जरूर मिलेगा। राइट(1979:18)ने वर्ग की अवधारणा को संशोधित किया। उनके अनुसार – "वर्गों की व्याख्या अधिक से अधिक उत्पादन, तकनीकी रूप में अलग-अलग तरह के कर्मचारियों पर नियंत्रण तथा दायित्व निर्वहन के आधार पर की जाती है।" इस प्रकार प्रबंधक मालिकों की श्रेणी में नहीं गिने जाते।

ऐसे में टकराव प्रच्छन्न रूप में बना रहता है परंतु वह तब तक प्रकट नहीं होता जब तक नियंत्रण करने वाले पदों पर बैठे लोग वैधानिक नियमों के दायरे में रहते हुए शक्ति का इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार आधुनिक समाजों में योग्य एवं अनुभवी लोग अपनी प्रतिभा व क्षमता के बल पर जिम्मेदारी के पदों पर आसीन हो जाते हैं और उनके प्रभुत्व को वे लोग बिना कोई प्रश्न किये स्वीकार कर लेते हैं जो उनके नीचे काम करते हैं। न्यायसंगत प्रभुत्व संपन्न लोग अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए समाज में स्थिरता लाते हैं। टकराव की स्थिति केवल तब ही पैदा हो सकती है जब नियंत्रण करने वाले प्रभुत्व संपन्न लोग अन्याय करें अथवा कानून का उल्लंघन करें।

4.4 विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत

समाज में वर्गवाद की प्रवृति तथा संघर्ष के सिद्धांत की व्याख्या करने के उद्देश्य से लेंस्की तथा डहरेन्डोर्फ विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत लेकर आए। विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत को जन्म देने का श्रेय सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री तथा राजनीति विदविल्फ्रेडो परेटो को है। विल्फ्रेडो परेटो का जन्म 1848 में इटालियन पिता तथा फ्रांसीसी माता से फ्लोरेंस में हुआ था। वहीं रहकर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और महान विचारक बने। मूलतः वे वर्गीय सिद्धांत में विश्वास रखते थे। समाज तथा सामाजिक प्रणालियों में जो प्राकृतिक रूप से संतुलन बनाए रखने की प्रवृत्ति होती है, उसमें विल्फ्रेडो परेटोकी गहरी निष्ठा थी। एडमस्मिथ का अनुसरण करते हुए उन्होंने राज्य की सत्ता के विरुद्ध मुक्त आदान-प्रदान तथा उदारवादी सिद्धांत को समाज के लिए ज्यादा उपयोगी बताया था। वे शक्ति को भ्रष्टाचार व दुर्भावना का हथियार मानते थे जिसे राज्य दमनकारी नीतियों के लागू करने में इस्तेमाल करता है। यद्यपि उन्होंने समाज में जो आयु, लिंग, शारीरिक शक्ति तथा स्वास्थ्य के आधार पर असमानताएं देखने को मिलती हैं उनके लिए वे भेदभाव तथा स्तरीकरण की प्रवृत्ति को जिम्मेदार मानते हैं। जनसांख्यिकीय विविधताओं के आधार स्वरूप मौजूद बांझपन तथा उत्पादकता के लिए भी वेभेदभाव तथा स्तरीकरण की प्रवृत्ति को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। ऐसी स्थिति में टकराव, विरोध व संघर्ष का बना रहना अनिवार्य है तथा स्वाभाविक भी। समाजशास्त्रीयदि इन बुराइयों को समझ भी जाते हैं, तब भी उनके लिए इन्हें जड़ से उखाड़ फेंकना मुश्किल है। जब वे यह मानते हैं कि समाज में बदलाव सदैव होते रहते हैं, तब वे यह मानने को तैयार नहीं होते कि यह बदलाव सदा एक जैसी प्रवृत्ति वरफ्तार के साथ होते हैं। उनका मानना है कि बदलावों की रफ्तार कभी मंद होती है तो कभी तेज, कभी स्थिरता भी देखने को मिलती है। इस प्रकार उनका टकरावया संघर्ष का सिद्धांत कार्लमार्क्स के सिद्धांत का धुर विरोधी है।

समाज में जो आर्थिक तथा संगठनात्मक स्वरूप उभरकर सामने आते हैं उनके लिए वे किसी कारण विशेष को जिम्मेदार नहीं मानते, परन्तु प्राकृतिक कारणों को पूरी तरह जिम्मेदार मानते हैं, मनुष्यों की प्रकृति को नहीं। विशिष्ट वर्गीय लोग किसी सामाजिक समूह अथवा वर्ग में से उत्पन्न होते हैं और दूसरों पर अपना आधिपत्य जमाते हैं। विशिष्ट वर्गीय व्यक्ति अपने आप को शक्ति संपन्न बनाने तथा दूसरों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए

संघर्ष करते हैं, बल प्रयोग करते हैं और विरोध करने वालों को उखाड़ फेकतें हैं फिर विरोधियों को अपने काबू में कर लेते हैं। यह प्रक्रिया समाज में अंदर ही अंदर चलती रहती है और लोगों में बदलाव आते रहते हैं। लेंस्कीकी ने विशिष्ट वर्गों को चार श्रेणियों में बांटा है।विल्फ्रेडो परेटोने भी चार प्रकार के विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया है– पहला है दमनकारी कुलीन वर्ग (परेटोने इसे सिंह की संज्ञा दी है) दूसरा है उत्प्रेरक कुलीन वर्ग (परेटोने इसे लोमड़ी कहा है) तीसरा है चालाक कुलीन वर्ग (जिसे परेटोनेउल्लू कहा है) चौथा है आधिपत्यवादी कुलीन वर्ग (जिसे परेटोने भालू की संज्ञा दी है)। ये चारों कुलीन वर्ग के आदर्श प्रकार हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चालाक किस्म का व्यक्ति भी आधिपत्य स्थापित कर सकता है और लोगों का दमन करते हुए उन्हें अपने कब्जे में किये रह सकता है। उत्प्रेरक की श्रेणी में आने वाला कुलीन दूसरों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए तरकीब का इस्तेमाल करता है। डहरेन्डोर्फ समाज को दो वर्गों में बांटता है शासक और शासित। यह सिद्धांत भी कुलीन वर्गीय सिद्धांत से मेल खाता है।

जॉन स्कॉट (2001) कुलीन वर्गीय सिद्धांत को समाज के लिए सार्थक नहीं मानता क्योंकि इसमें दूसरों को बलपूर्वक अपने अधीन बनाए रखने की प्रवृत्ति निहित है। डहरेन्डोर्फ तथा परेटोके सिद्धांतों पर विचार करें तो ये दमनकारी प्रवृत्ति के कारण सर्व स्वीकृत नहीं माने जा सकते। जॉन स्कॉट के अनुसार बलपूर्वक दूसरों को अपने अधीन रखने का विचार विवेक पूर्वक समाज को चलाए जाने वाले विचार से बदला जाना चाहिए। शक्ति की परिभाषा इस बात से की जा सकती है कि वह कितना और कैसा प्रभाव डालती है। वास्तविक सामाजिक शक्ति वह है जो सतर्कता पूर्वक उन लोगों में बदलाव लाए जो सामाजिक व्यवस्था के अधीन रहते हैं। अतः विशिष्ट जनवे नहीं हैंजो दूसरों की तुलना में अत्यधिक योग्य हैं तथा ऊँचें स्तर वाले हैंद्यअपितु, वे हैं जो प्रभुत्व का इस्तेमाल करते हैं तथा इसे धारण करने की क्षमता रखते हैं। प्रभुत्व का इस्तेमाल शून्य में नहीं किया जा सकता। अतः विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत अथवा कुलीन तंत्रीय सिद्धांत की परिकल्पना तभी की जा सकती है जब दो वर्ग मौजूद हों– एक वह जो प्रभुत्व धारण करता है तथा दूसरा वह जिस पर प्रभुत्व स्थापित किया जाता है। शक्ति की अवधारणा के लिए दो पक्षों का होना जरूरी है जो आपस में टकरा भी रहें हों और उनके लक्ष्य भी स्पष्ट हों। विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत वंशानुक्रम पर जोर देता है तथा अपने आप को अस्तित्व बनाए रखने के लिए सामाजिक शक्ति का इस्तेमाल करता है। अतः यह एक संघर्षात्मक अथवा टकराव का सिद्धांत ही है।

4.5 वर्ग संघर्ष का सिद्धांत की नवीन प्रवृतियां

बीते समय समाज में संस्थागत ढांचों को सांस्कृतिक संरचना के आधार पर निर्मित करने का रुझान देखने को मिलता था, तार्किक आधार पर सामाजिक संरचना के प्रति रुझान नहीं था। बारहवीं शताब्दी का अत्यधिक प्रभावशाली विचारक मिशेल फौकॉ समाज में शक्ति के इस्तेमाल की व्याख्या करने के बारे में एक नई धारणा लेकर आया। अब तक विद्वानों की जो राय सामाजिक शक्ति संतुलन के बारे में थी, फौकॉ की राय इस मामले में नितांत भिन्न थी। फौकॉ के अनुसार शक्ति समाज के कुछ खास लोगों में अथवा कुछ स्तरों में निहित नहीं होती अपितु ये पूरे समाज में व्याप्त होती है, समाज के सभी घटकों में निहित रहती है। शक्ति सदैव विध्वंसकारी नहीं होती, बल्कि यह सामूहिक प्रयासों से समर्थन पाकर समाज में सुधार लाने तथा उत्पादन बढ़ाने में सहयोगी भी हो सकती है। समाज में अंतर्निहित शक्ति के बारे में फौकॉ का विचार है कि यह समाज में मौजूद किसी भी व्यक्ति के द्वारा किसी भी स्थिति में सामाजिक हित के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। उदाहरण के लिए- मित्रों के एक समूह में कोई एक व्यक्ति किसी खास स्थिति में नेतृत्व की भूमिका अदा कर सकता है जैसे- संकट के समय बीमार व्यक्ति को अस्पताल ले जा सकता है, आवश्यकता पड़ने पर

अपने किसी साथी को रमणीय स्थल पर ले जा सकता है, कोई स्कूल बस के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने पर उस में फंसे हुए लोगों की मदद करसकता है। फौकॉ के अनुसार संघर्ष, सहमति तथा विरोध हर संबंध के अनिवार्य अंग होते हैं।

जॉन स्कॉट की व्याख्या के अनुसार- शक्ति के दो तरह के उपयोग हो सकते हैं, एक दमनकारी उपयोग जिसके तहत लोगों को दंडित किया जा सकता है, दूसरे सहयोगी उपयोग जिनका आधार तर्क, औचित्य एवं आवश्यकता होते हैं। शक्ति के पहले प्रभाव को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक यह कि शक्ति का इस्तेमाल दूसरों को अपने अनुसार जबरन चलाने के लिए किया जाए और दूसरी अवस्था में दो तरह से शक्ति का उपयोग संभव है। एक, जहाँ शक्ति प्रदर्शन आवश्यक है तथा दूसरा,जहाँ शक्ति प्रदर्शन विधि सम्मत है। शक्ति का रचनात्मक प्रयोग सामूहिक विश्वासों तथा व्याप्त मूल्यों के आधार पर किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे अर्थ में किया जाने वाला शक्ति प्रयोग अपेक्षाकृत कम शोषणकारी है अथवा वंशानुगत शक्ति परीक्षण को बढ़ावा नहीं देता, बल्कि इसका अर्थ यह है कि ये लोगों को दूसरी तरह सोचने के लिए दबाव बनाता है। शक्ति के दूसरे प्रकार के प्रयोग में टकराव निहित रहता है और साथ ही इसमें एक प्रकार की असहमति भी निहित रहती है क्योंकि इसमें स्थिति की वास्तविकता को छिपाने की प्रवृत्ति होती है।

फौकॉ ने अपनी व्याख्या के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि ज्यादातर नियंत्रण करने वाले तरीके वह होते हैं जिनमें स्पष्टता बहुत कम होती है। रैंडाल कोलिंस (1975) ने टकराव के सिद्धांत में कुछ परिवर्तन किए हैं। फौकॉल्टकी तरह वह भी टकराव तथा संघर्ष को जीवन के दिन प्रतिदिन के कार्यों में देखता है। मनुष्यों के बीच जितने भी संबंध बनते हैं उनमें कुछ मनमुटाव, कुछ आधिपत्य की भावना तथा कुछ टकराव मौजूद रहते हैं। इसके साथ ही उनमें एकत्व की भावना भी निहित रहती है। हाल के कुछ विद्वान जैसे कूलन टकराव के द्वंद्वात्मक सिद्धांत से हटकर सोचते हैंद्यवे प्रायोगिक आंकड़ों पर काम करना ज्यादा पसंद करते हैं। उन्हें जमीनी सिद्धांतों में अधिक विश्वास है।

गोफमैन ने पारस्परिक प्रभाव डालने वाले सिद्धांतों के मॉडल का इस्तेमाल किया है। वह कार्यों को दो श्रेणियों में विभाजित करता है– आगे बढ़ कर किए जाने वाले कार्य तथा पीछे रहकर किए जाने वाले कार्य। गोफमैन सभी सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को सामने आकर अंजाम दिया जाना पसंद करता है। हममें से ज्यादातर लोग उन कार्यों को भी अंजाम देते हैं जिन्हें हम करना नहीं चाहते थे। हम बहुत कुछ ऐसा भी कह जाते हैं जो कहना हमें पसंद नहीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग दूसरों के दबाव में अथवा उनके आदेशों पर कार्य करते हैं, वे उन्हें हमेशा मन से नहीं करते। उनके मन में असहमति का भाव रहता है जिसे वे प्रकट नहीं कर पाते। किसी से आदेश पाकर काम करके हम प्रायः खुश नहीं होते, हम अपनी मर्जी से पूरी आजादी के साथ काम करने की इच्छा रखते हैं। वह व्यक्ति जो अपने मालिक अथवा प्रबंधक से आदेश लेकर कार्यालय में काम पूरा करता है,उसके मन में उसके प्रति विरोध फुनफुनाता रहता है जिसे वह उस समय प्रकट नहीं करता, परंतु जब अपने घर पहुंचता है तो पत्नी के सामने बॉस को गाली देता है। उसे मूर्ख भी कह सकता है। इस प्रकार कार्य की पूर्ति के समय व्यक्ति अपने मन की वास्तविक स्थिति तथा प्रतिरोधी भाव को छुपा लेता है। इसी प्रकार एक जैसी हैसियत वाले लोग प्रायः एकता प्रदर्शित करने के लिए, सामाजिक अखंडता बनाए रखने के लिए, मेल-मिलाप दिखाने वाले कार्य जैसे साथ-साथ खाना, लोगों के कामों में हाथ बंटाना आदिकार्य करते रहते हैं। इस प्रकार संगठनात्मक ढांचों की जटिलताएं प्रभुत्व के लिए संघर्ष द्वारा अनुकूलित कर दी जाती हैं। इस प्रकार संतुलन बना रह सकता है परंतु कभी-कभी विरोध प्रकट करने की

नौबत आ ही जाती है। अतः प्रतिरोध को प्रायः दबाकर ही रखा जाता है क्योंकि प्रतिरोध के कारण कार्यालय में बॉस को बुरा लग सकता है अथवा कार्यस्थलअथवा कारखाने में हड़ताल भी हो सकती है।

समकालीन विचारक विरोध की बारीकियों को समझने तथा सही प्रबंधन द्वारा उनका हल निकालने में ज्यादा रुचि रखते हैं। वे नहीं चाहते कि दोनों ओर से विरोध बढ़े, लोग अपने-अपने पक्ष के साथ अड़ कर खड़े हों और सीधा टकराव हो जाए। वे आदेश देने वाले लोगों तथा आदेश के अनुसार कार्य करने वाले लोगों के संबंधों का बारीकियों से विश्लेषण करते हुए टकरावों का समाधान तलाशते हैं तथा संसाधन व शक्ति प्राप्त करने के लिए शुद्ध प्रतियोगिता की भावना को बढ़ावा देते हैं।

4.6 सारांश

इस इकाई में शिक्षार्थियों ने सामाजिक संगठन की व्याख्या करने वाले सिद्धांत के बारे में पढ़ा। इस इकाई में शिक्षार्थियों ने उन सिद्धांतों के बारे में पढ़ा जो संसाधनों की समीक्षा करते हैं तथा समाज में शक्ति के वितरण की व्याख्या करते हैं। मानव समाजों में हर कोई एक जैसा नहीं होताद्य समाज चाहे बड़ा हो या छोटा, लोगों का मूल्यांकन उनकी हैसियत के अनुसार किया जाता है। अधिकतर समाजों में संसाधनों पर नियंत्रण तथा उनका वितरण समाज के संगठनात्मक ढांचे के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है। हैसियत के विभिन्न स्तर समाज में मौजूद रहते हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि मनुष्यों में असमानता अनिवार्य रूप से पाई जाती है। कुछ यह मानते हैं कि इस असमानता को मिटाया जा सकता है तथा एक समरस समाज का निर्माण किया जा सकता है जिसमें सब आपसी समझ से बिना किसी भेदभाव के तथा ऊंच नीच की भावना से ऊपर उठकर रहते हों। न कोई गरीब हो न अमीर, न कोई शोषक होन शोषित। परेटो असमानता की स्थिति को मनुष्यों में अवश्यंभावी मानता है। जबकि कार्ल मार्क्स का यह मानना है कि शोषक व शोषित के बीच की अमीरी व गरीबी की खाई पाटी जा सकती है। जैसा कि हमने देखा, टकराव के सिद्धांत का श्रेय प्रायः कार्ल मार्क्स को दिया जाता है। वर्ग भेद तथा वर्गीय संघर्ष का सिद्धांत कार्ल मार्क्स के साथ जुड़ गया है। परंतु बाद के विचारक, समाज में वर्गीय संघर्ष के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी इन वर्गों की प्रकृति की व्याख्या करते हैं। वे नहीं मानते कि टकराव अथवा विरोध के कारण समाज में धन व संसाधनों का असमान वितरण ही है। उनके अनुसार समाज में प्रभुत्व के अन्य अनेक स्रोत भी होते हैं। जैसे की दक्षता, ज्ञान,राजनैतिक नेतृत्व तथा अन्य मामलों में लैंगिकता, जाति, कुल आदि भी।

आधुनिक युग में पूंजीवादी समाज का स्वरूप बदल गया है। कार्ल मार्क्स की पूंजीवादी अवधारणा से यह नितांत भिन्न है। अब औद्योगिक घराने हैं, निजी उद्योग संस्थान हैं, मिश्रित पूंजीवाली कंपनियां है जिनमें स्वामित्व, प्राधिकार एवं नियंत्रण संगठनों के विभिन्न स्तरों में निहित रहता है। ऐसे में विचारक किसी एक शक्ति स्रोत को प्रमुखता नहीं दे सकते। इसीलिए शक्ति कहां और किसमें निहित है इस बारे में अलग-अलग मत हैं। कुछविद्वान् प्राधिकार में तथा कुछ विधिसम्मतता में शक्ति देखते हैं, कुछ दबदबे में तथा कुछ दूसरों से अपने प्रभाव तथा क्षमता के बल पर अपने अनुसार काम करवा लेने की योग्यता में शक्ति का निवास मानते हैं। एक ओर वर्गभेदवादी एवं वर्गसंघर्ष के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले पारंपरिक विचारक हैं जिनके अनुसार बड़े तथा व्यापक वर्ग संघर्ष से होने वाली क्रांति होती है और बड़े स्तर पर बदलाव आते हैं। दूसरी ओर आधुनिक विचारक हैं जिनका मानना है कि टकराव जीवन की दिन-प्रतिदिन की घटनाओं के फलस्वरूप सामने आते रहते हैं। अति आधुनिक विचारक प्रयोगात्मक अनुसंधान में विश्वास रखते हैं तथा यह मानते हैं कि छोटे

मोटे वैभिन्य व टकराव सदा ही मौजूद रहते हैं और इनके कारण अंततः समाज में समरसता बनी रहती है। वर्ग संघर्ष में विश्वास रखने वाले विचारक प्रतिरोध को सामाजिक अखंडता तथा सामाजिक संतुलन के लिए अनिवार्य मानते हैं। उनका व्यवहारिकतावादी विचारकों के साथ मतभेद केवल इस तथ्य पर है कि वे सदा इस बात पर जोर देते रहते हैं कि संतुलन किस प्रकार स्थापित किया जाए और फिर उसे किस प्रकार बनाए रखा जाए। क्योंकि समाज में असमानता और शोषण किसी न किसी रूप में प्रायः बने ही रहते हैं। वे कम या ज्यादा हो सकते हैं पर पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाते। इसके कुछ कारण वंशानुगत है तथा कुछ लोगों की क्षमताओं में विद्यमान रहने वाली विविधताएं हैं।

इस प्रकार टकराव व वर्ग संघर्ष के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि सामाजिक संबंधों तथा सामाजिक संगठनों की जड़ों में मतभेद व प्रतिरोध अनिवार्य रूप से पाए जाते हैं। समाज अपने संगठनात्मक ढांचों में बदलाव लाते हुए सदैव बदलता रहता है और स्थिरता व समरसता बनाए रखने के लिए प्रयासकरता रहता है। प्रतिरोध को लगातार कम करते जाना तथा ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करते रहना इनका उद्देश्य रहता है कि वे प्रकट न हो सकें।

वर्ग संघर्ष के सिद्धांत का उद्देश्य सामाजिक संगठन का तथा सामाजिक व्यवहार का समग्रता के साथ अध्ययन करना है। देखना यह है कि इस सिद्धांत के समर्थक वृहत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य अपनाते हैं या स्थितिपरक प्रयोगात्मक। सामाजिक असमानता, सामाजिक स्तरीकरण तथा सामाजिक वर्गीकरण का विशद अध्ययन करने में वर्ग संघर्ष का सिद्धांत बहुत सफल रहा है। उसने इन सब की यथास्थिति को भी अच्छी तरह समझा है तथा उसके कारणों को भीद्य कुल मिलाकर वर्ग संघर्ष का सिद्धांत इस प्रकार की तमाम असमानताओं को समाप्त करने अथवा कम करने के लिए सबसे कारगर सिद्धांत है। परंतु यह सिद्धांत राजनैतिक नहीं है।

बोध प्रश्न

1) समाज का अध्ययन करने की दृष्टि से प्रकार्यात्मक सिद्धांत तथा वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत में मुख्य अंतर क्या है?

.....

.....

.....

2) सामाजिक परिवर्तन के लिए वर्ग संघर्ष का सिद्धांत एक बृहत ऐतिहासिक प्रविधि है। व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत क्या है? यह प्रतिरोध की व्याख्या किस प्रकार करता है?

.....

.....

.....

4) वर्ग संघर्ष के सिद्धांत की स्थापना में राल्फ डहरेन्डोर्फके योगदान पर प्रकाश डालिए?

.....

.....

.....

.....

5) समाज में सत्ता अथवा शक्ति कहां अवस्थित रहती है? समझाइए।

.....

.....

.....

.....

6) सामाजिक सत्ता की सूक्ष्म प्रक्रिया से क्या तात्पर्य है? उचित उदाहरण देकर समझाइए।

.....

.....

.....

.....

4.7 सन्दर्भ

कोलिंस, रैंडल. (एड) 1994. फोर सोशियोलॉजिकल ट्रेडिशन्स. ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोलिंस, रैंडाल. 2004. इंटरेक्शन रिचुअल चेन्स. प्रिंसटोनः प्रिंसटोन यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोसेर, लेविस. 1956. द फंक्शन्स ऑफ सोशल कनफ्लिक्ट.रूतलेज.

डहरेन्डोर्फ, राल्फ. 1959. क्लास एंड क्लास कनफ्लिक्ट इन इंडस्ट्रियल सोसाइटी. स्टैनफोर्डः स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

फौकॉ, मिशेल. 1975. डिसिप्लिन एंड पनिश. लंदनः एलन लेन.

गिड्डेन्स, अन्थोनी. 1976. न्यू रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड. कैंब्रिजः पॉलिटी प्रेस.

गिड्डेन्स, अन्थोनी. 1979. सेंट्रल प्रोब्लेम्स इन सोशल थ्योरी, लंदनः मैमिलन.

लेंस्की, गेरहार्ड. 1966. (रीप्रिंट 1984). पावर एंड प्रिविलेजः अ थ्योरी ऑफ सोशल स्ट्रैटिफिकेशन. नार्थ कैरोलिना, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस

मिल्स, सी राइट. 1956. द पावर इलीट. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

परेटो, विल्फ्रेड. 1916. (रीप्रिंट 1963). अ ट्रीटीसे ऑन जनरल सोशियोलॉजी. न्यू यॉर्कः डोवेर.

पौलत्जस 1975. क्लासेज इन कंटेम्परारी कैपिटलिज्म. लंदनः न्यू लेफ्ट बुक्स.

रिट्जर, जॉर्ज. (एड.) 1990. फ्रंटियर्स ऑफ सोशल थ्योरीः द न्यू सिंथेसिस. न्यू यॉर्कः कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.

स्कॉट, जॉन. 2001. पावर. कैंब्रिजः पॉलिटी प्रेस.